मूल्य : ₹ 50

जून 2026

आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप
ICAR

खेती

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

विश्व पर्यावरण दिवस

/InAgrisearch | /user/icarindia | officialicarindia | www.icar.org.in | /icarindia

प्रकृति संरक्षण से ही सुरक्षित होगा भविष्य

प्रकृति लगातार संकेत दे रही है। कहीं जंगल धधक रहे हैं, कहीं समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है, तो कहीं असामान्य गर्मी लोगों के जीवन और खेती-किसानी दोनों को प्रभावित कर रही है। जलवायु परिवर्तन अब केवल वैज्ञानिक रिपोर्टों का विषय नहीं रहा, बल्कि यह खेतों, गांवों और शहरों में महसूस की जाने वाली वास्तविक चुनौती बन चुका है। ऐसे समय में विश्व पर्यावरण दिवस 2026 'जलवायु कार्रवाई' विषय के माध्यम से दुनिया को यह संदेश दे रहा है कि अब केवल चर्चा नहीं, बल्कि तेज और प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है। विश्व पर्यावरण दिवस हर वर्ष 5 जून को मनाया जाता है और इस बार इसकी वैश्विक मेजबानी अजरबैजान कर रहा है। 'Inspired by Nature- For Climate- For Our Future' थीम के साथ आयोजित यह अभियान प्रकृति-आधारित समाधानों और सामूहिक जिम्मेदारी पर जोर देता है। यह केवल पर्यावरण संरक्षण का कार्यक्रम नहीं, बल्कि विकास, ऊर्जा, कृषि और मानव जीवन को नई दिशा देने का वैश्विक प्रयास है।

जलवायु परिवर्तन का सबसे गहरा प्रभाव कृषि क्षेत्र पर दिखाई दे रहा है। देश के कई हिस्सों में वर्षा का चक्र अनियमित हो चुका है। कभी अत्यधिक बारिश फसलों को नुकसान पहुंचाती है, तो कभी लंबे सूखे से उत्पादन प्रभावित होता है। बढ़ता तापमान फसलों की उत्पादकता, मृदा की गुणवत्ता और जल उपलब्धता पर असर डाल रहा है।

विशेषज्ञों के अनुसार यदि तापमान वृद्धि इसी गति से जारी रही, तो आने वाले वर्षों में खाद्यान्न उत्पादन पर गंभीर दबाव पड़ सकता है। धान, गेहूं, मक्का और दलहनी फसलों की पैदावार पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पहले ही देखा जा रहा है। पशुपालन क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है, क्योंकि अत्यधिक गर्मी पशुओं की उत्पादकता और स्वास्थ्य दोनों को प्रभावित करती है।

हरित पर्यावरण, समृद्ध कृषि और सुरक्षित भविष्य

इस वर्ष मेजबान देश अजरबैजान ने जलवायु कार्रवाई को अपनी राष्ट्रीय प्राथमिकताओं में शामिल किया है। यूरोप और एशिया के बीच स्थित यह देश प्राकृतिक विविधता और ऊर्जा संसाधनों के लिए जाना जाता है। अब यह हरित विकास और नवीकरणीय ऊर्जा की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है।

अजरबैजान ने वर्ष 2035 तक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में 40 प्रतिशत कमी लाने का लक्ष्य रखा है। इसके साथ ही वर्ष 2030 तक ऊर्जा उत्पादन में नवीकरणीय स्रोतों की हिस्सेदारी बढ़ाने पर कार्य किया जा रहा है। बड़े सौर और पवन ऊर्जा संयंत्र विकसित किए जा रहे हैं, जो ऊर्जा परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण कदम माने जा रहे हैं।

राजधानी बाकू में कम उत्सर्जन वाले सार्वजनिक परिवहन, इलेक्ट्रिक वाहनों के लिए आधारभूत संरचना और स्मार्ट सिटी मॉडल विकसित किए जा रहे हैं। वहीं कुछ क्षेत्रों को 'शून्य उत्सर्जन क्षेत्र' के रूप में विकसित करने की पहल भी की गई है।

वहीं भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए जलवायु कार्रवाई का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। देश की बड़ी आबादी कृषि पर निर्भर है और मौसम में थोड़ा सा बदलाव भी किसानों की आय को प्रभावित कर सकता है।

ऐसे में जलवायु अनुकूल कृषि तकनीकों को बढ़ावा देना समय की आवश्यकता है। सूक्ष्म सिंचाई, फसल विविधीकरण, प्राकृतिक खेती, ऊर्जा दक्ष तकनीकें और स्थानीय संसाधनों पर आधारित कृषि मॉडल किसानों को बदलती परिस्थितियों के अनुरूप तैयार कर सकते हैं।

विश्व पर्यावरण दिवस 2026 यह याद दिलाता है कि जलवायु परिवर्तन भविष्य का संकट नहीं, बल्कि वर्तमान की चुनौती है। लेकिन इसके साथ यह उम्मीद भी जुड़ी है कि यदि दुनिया मिलकर प्रयास करे, तो धरती को संतुलित और सुरक्षित दिशा दी जा सकती है। प्रकृति से प्रेरित छोटे-छोटे कदम ही आने वाले समय में बड़े बदलाव की नींव बन सकते हैं।

बदलाव की राह

पिछले कई दशकों से दुनिया जलवायु परिवर्तन को लेकर चेतावनियां सुनती रही है। अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुए, लक्ष्य तय किए गए और कार्बन उत्सर्जन कम करने की बातें कही गईं। लेकिन अब दुनिया में बदलाव की नई तस्वीर भी दिखाई देने लगी है। आज सौर ऊर्जा तेजी से विस्तार कर रही है। शहरों में इलेक्ट्रिक बसें और ई-वाहन बढ़ रहे हैं। कई देशों ने जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता कम करने की दिशा में बड़े कदम उठाए हैं। जंगलों के पुनर्स्थापन, जल संरक्षण और हरित बुनियादी ढांचे को विकास योजनाओं का हिस्सा बनाया जा रहा है। विश्व पर्यावरण दिवस 2026 इसी सकारात्मक परिवर्तन को जन-आंदोलन का रूप देने का प्रयास है। अभियान का मुख्य संदेश यह है कि जलवायु संकट का समाधान केवल सरकारों से नहीं, बल्कि समाज की भागीदारी से संभव है।

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका

वर्ष: 79, अंक: 2, जून 2026

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** — **अध्यक्ष**
   उपमहानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (कृज्ञाप्रनि)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. विनोद कुमार सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद
4. **डा. धीर सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
5. **डा. के.के. सिंह** — **सदस्य**
   कुलपति
   सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
   मोदीपुरम, मेरठ
6. **श्री हर्षवर्धन** — **सदस्य**
   प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली
7. **श्री रितु राज** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **सुश्री नीलम त्यागी** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
   संपादक, हिन्दी संपादकीय एकक (कृज्ञाप्रनि)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल
संपादक
सुनीता अरोड़ा
संपादन सहयोग
गजेन्द्र
प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन
प्रभारी (व्यवसाय एकक)
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: businessuniticar@gmail.com
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 50.00 वार्षिक : रु. 500.00
विशेषांक : रु. 200.00
आवरण चित्र
श्री अशोक सिंह
E-mail : khetidipa@gmail.com

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों/कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

विषय-सूची

निदेशक की कलम से

विश्व पर्यावरण दिवस 2026 : प्रकृति के साथ संतुलित विकास-**अनुराधा अग्रवाल**

4 **अद्यतन**

ड्रोन तकनीक से स्मार्ट खेती
मनोज कुमार तरवरिया **और** सतीश भागवतराव आहेर

10 **संभावनाएं**

मूल्य श्रृंखला और गौण उद्यम से भरपूर अवसर
सर्वेश कुमार

16 **निवारण**

सोयाबीन में फलियां कम बनने की समस्या का समाधान
आराधना कुमारी, संतोष कुमार सिंह **और** अपर्णा जायसवाल

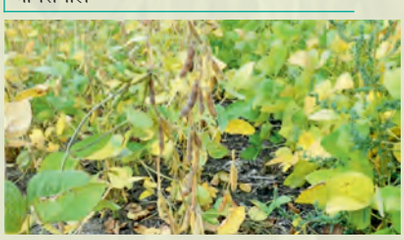

20 **नियंत्रण**

मक्का फसल में नाशीजीव प्रबंधन
मुकेश कुमार खोखर, अनूप कुमार, राज किरण, लिकोन आचार्य **और** मनोज चौधरी

7 **प्रभावी**

कम लागत में बीज अंकुरण का परीक्षण
कल्याणी कुमारी, कल्याणराव, पवित्रा वी., अंजनी कुमारी सिंह **और** संजय कुमार

14 **रणनीति**

ग्रीष्म ऋतु में खरगोश पालन
सन्तोष कुमार, पल्लवी चौहान, अब्दुल रहीम **और** आर. पुरुषोत्तमन

18 **तकनीक**

आधुनिक विधि से धान की सीधी बुआई
देवेश कुमार **और** राजेश चन्द्र वर्मा

23 **लाभकारी**

कपास मूल्य श्रृंखला में उपयोगी बेलिंग तकनीक
मनोज कुमार महावर, रोहित घोसरे, शेषराव काऊतकर, ज्योती ढाकणेलाड **और** वर्षा साटनकर

विषय-सूची

26 दलहन

सतत कृषि में लाभकारी है मसूर उत्पादन
ज्योत्स्नारानी प्रधान, हेमलता सिंह, गीता कुमारी, अमन जयसवाल **और** आशुतोष कुमार

28 उपाय

श्री अन्न फसलों में रोगों की रोकथाम
संजीव कुमार, सी.एस. आजाद, देवेन्द्र मंडल **और** राकेश कुमार

31 महत्व

कृषि में सस्य विज्ञान की बढ़ती भूमिका
शुभ्रांशु सिंह, राहुल यादव, विनायक प्रताप शाही, अमन सिंह **और** देवेश पाठक

33 कृषि कैलेण्डर

जून के मुख्य कृषि कार्य
राजीव कुमार सिंह, कपिला शेखावत, अंजली पटेल, एस.एस. राठौर, विनय उपाध्याय **और** प्रवीण कुमार उपाध्याय

विश्व पर्यावरण दिवस

आवरण II
प्रकृति संरक्षण से ही सुरक्षित होगा भविष्य

नवाचार

आवरण III
डेरी पशुओं के लिए कम लागत वाली स्वचालित पेयजल इकाई

विश्व पर्यावरण दिवस 2026 : प्रकृति के साथ संतुलित विकास

विश्व पर्यावरण दिवस प्रत्येक वर्ष 5 जून को पूरी दुनिया में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाने के उद्देश्य से मनाया जाता है। आज पृथ्वी अभूतपूर्व पर्यावरणीय संकटों का सामना कर रही है। बढ़ता वैश्विक तापमान, जल संकट, प्रदूषण, जैव विविधता का क्षरण और प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन मानव सभ्यता के सामने गंभीर चुनौती बन चुके हैं। इनके अतिरिक्त बढ़ता तापमान, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ और प्राकृतिक आपदाएं एक गंभीर चेतावनी का संकेत हैं। ऐसे में प्रकृति के साथ संतुलित विकास की अवधारणा समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

आज विकास की दौड़ में मनुष्य ने प्रकृति के संतुलन को गहराई से प्रभावित किया है। बड़े-बड़े उद्योग, बढ़ती आबादी, शहरीकरण और उपभोक्तावादी जीवनशैली ने पर्यावरण पर अत्यधिक दबाव डाला है। इसके कारण मौसम चक्र असामान्य हो गए हैं। कहीं भीषण गर्मी पड़ रही है, तो कहीं अचानक बाढ़ और चक्रवात तबाही मचा रहे हैं। प्रकृति के नियमों की अनदेखी अब मानव जीवन को सीधे प्रभावित कर रही है।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में पर्यावरणीय असंतुलन का प्रभाव सबसे अधिक किसानों और ग्रामीण समुदायों पर दिखाई देता है। अनियमित वर्षा, सूखा, ओलावृष्टि और बढ़ते तापमान ने खेती को जोखिमपूर्ण बना दिया है। खाद्यान्न उत्पादन प्रभावित हो रहा है और किसानों की आय पर संकट बढ़ रहा है। इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण का मुद्दा केवल पेड़-पौधों तक सीमित नहीं, बल्कि खाद्य सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता से भी जुड़ा है।

विश्व पर्यावरण दिवस 2026 हमें यह सोचने का अवसर देता है कि विकास का सही अर्थ क्या है। यदि इसकी कीमत स्वच्छ हवा, शुद्ध जल और स्वस्थ जीवन के रूप में चुकानी पड़े, तो ऐसा विकास टिकाऊ नहीं कहा जा सकता है। आज आवश्यकता ऐसे विकास मॉडल की है, जिसमें आर्थिक प्रगति और पर्यावरण संरक्षण दोनों साथ-साथ चलें।

प्लास्टिक प्रदूषण आज पूरी दुनिया की बड़ी समस्या बन चुका है। यहां नदियां, समुद्र, खेत और शहर प्लास्टिक कचरे से प्रभावित हो रहे हैं। इससे जलीय जीवों का अस्तित्व संकट में पड़ गया है। इससे मृदा की उर्वराशक्ति कमजोर हो रही है और पशु-पक्षियों का जीवन भी संकट में पड़ता है। सरकारी प्रतिबंध के बावजूद आम लोगों की भागीदारी के बिना इस समस्या का समाधान संभव नहीं है। इस प्लास्टिक रूपी समस्या के विकल्प के तौर पर कपड़े या जूट थैले, पुनर्चक्रण और जिम्मेदार उपयोग जैसी आदतों को अपनाना होगा।

इसके अतिरिक्त जल संरक्षण भी पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है। देश के कई भागों में भूजल स्तर तेजी से गिर रहा है। भविष्य में जल संकट और गंभीर रूप ले सकता है। वर्षा जल संचयन, तालाबों का पुनर्जीवन और जल के विवेकपूर्ण उपयोग को जन आंदोलन बनाना होगा। गांवों की पारंपरिक जल संरचनाओं को पुनजीर्वित करना आज समय की मांग है।

वृक्षारोपण और वन संरक्षण पर्यावरण संतुलन बनाए रखने के सबसे प्रभावी उपायों में से एक हैं। पेड़ केवल ऑक्सीजन ही नहीं देते, बल्कि जलवायु नियंत्रण, मृदा संरक्षण और जैव विविधता के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विश्व पर्यावरण दिवस का वास्तविक उद्देश्य तभी पूरा होगा, जब पौधारोपण केवल औपचारिक कार्यक्रम न रहकर जन भागीदारी का अभियान बने। स्वच्छता अभियान, जल संरक्षण और हरित जीवन शैली जैसे प्रयास आज पर्यावरण को बचा सकते हैं। हम सब मिलकर धरती को फिर से हरा-भरा और संतुलित बना सकते हैं।

अतंत: हमें यह समझना होगा कि प्रकृति और मानव अलग नहीं है। प्रकृति सुरक्षित रहेगी, तभी मानव सभ्यता सुरक्षित रहेगी। पृथ्वी केवल संसाधनों का भंडार नहीं, बल्कि हमारा साझा घर है। अब प्रत्येक व्यक्ति को यह संकल्प लेना होगा कि वह अपने जीवन में पर्यावरण संरक्षण को प्राथमिकता देगा। यही मानवता के प्रति हमारी सच्ची जिम्मेदारी और सबसे बड़ा योगदान होगा। आधुनिक विकास और पारंपरिक पर्यावरणीय मूल्यों के बीच संतुलन बनाना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

ड्रोन तकनीक से स्मार्ट खेती

मनोज कुमार तरवरिया[1] और **सतीश भागवतराव आहेर**[2]

" भारत में बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन, श्रमिकों की कमी तथा सीमित प्राकृतिक संसाधनों के बीच कृषि को अधिक उत्पादक एवं टिकाऊ बनाना समय की प्रमुख आवश्यकता बन गया है। पारंपरिक खेती की अनेक चुनौतियों का समाधान आधुनिक तकनीकों के माध्यम से संभव है, जिनमें ड्रोन तकनीक एक महत्वपूर्ण नवाचार के रूप में उभर रही है। मानवरहित हवाई वाहन आधारित ड्रोन उच्च रिजॉल्यूशन कैमरों, मल्टीस्पेक्ट्रल एवं थर्मल सेंसर तथा जीपीएस प्रणाली से लैस होते हैं, जो फसल निगरानी, सटीक छिड़काव, सिंचाई प्रबंधन, भूमि सर्वेक्षण एवं उत्पादन पूर्वानुमान जैसे कार्यों में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। ड्रोन तकनीक के माध्यम से कम समय में बड़े क्षेत्र में समान रूप से छिड़काव किया जा सकता है, जिससे श्रम लागत में कमी, रसायनों का संतुलित उपयोग तथा पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित होता है। इसके अतिरिक्त, वास्तविक समय में प्राप्त फसल संबंधी आंकड़ों के आधार पर किसान बेहतर एवं वैज्ञानिक निर्णय ले सकते हैं। यद्यपि इसकी उच्च लागत, तकनीकी प्रशिक्षण की आवश्यकता तथा नियामकीय चुनौतियां अभी भी मौजूद हैं, फिर भी सरकारी प्रोत्साहन एवं तकनीकी प्रगति के कारण ड्रोन भारतीय कृषि को श्रम प्रधान प्रणाली से तकनीक प्रधान, स्मार्ट एवं टिकाऊ कृषि की दिशा में आगे बढ़ाने की अपार क्षमता रखते हैं। "

देश का खाद्यान्न उत्पादन 350 मिलियन टन से अधिक पहुंच चुका है, फिर भी बढ़ती जनसंख्या, पोषण सुरक्षा एवं निर्यात की आवश्यकताओं को देखते हुए उत्पादन में निरंतर वृद्धि आवश्यक है। आगामी वर्षों में खाद्यान्न उत्पादन को और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता होगी।

हालांकि, कृषि क्षेत्र वर्तमान में कई चुनौतियों का सामना कर रहा है, जैसे जलवायु परिवर्तन, अनियमित वर्षा, बढ़ता तापमान, श्रमिकों की कमी, उत्पादन लागत में वृद्धि, कीट एवं रोग प्रकोप तथा सीमित जल संसाधन। ऐसी परिस्थितियों में पारंपरिक खेती के साथ आधुनिक तकनीकों को अपनाना समय की आवश्यकता बन गया है। ड्रोन तकनीक इसी दिशा में एक प्रभावी एवं भविष्य उन्मुख समाधान के रूप में उभर रही है।

ड्रोन, एक ऐसा उड़ने वाला उपकरण है, जिसे रिमोट कंट्रोल या कंप्यूटर सॉफ्टवेयर की सहायता से संचालित किया जाता है। इसमें उच्च रिजॉल्यूशन कैमरे, मल्टीस्पेक्ट्रल एवं थर्मल सेंसर, जीपीएस प्रणाली तथा डेटा विश्लेषण की क्षमता होती है।

प्रारंभ में ड्रोन का उपयोग मुख्यत: सैन्य उद्देश्यों के लिए किया जाता था, लेकिन वर्तमान में इसका उपयोग कृषि, आपदा प्रबंधन, पर्यावरण निगरानी एवं औद्योगिक सर्वेक्षण जैसे क्षेत्रों में तेजी से बढ़ रहा है। आज कृषि क्षेत्र में ड्रोन सटीक खेती का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुके हैं।

कृषि ड्रोन

बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्य उत्पादन पर दबाव लगातार बढ़ रहा है।

[1]सहायक प्राध्यापक, राजमाता विजयराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर-474002 (मध्य प्रदेश); [2]वैज्ञानिक-सी, आईसीएमआर-राष्ट्रीय पर्यावरणीय स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान, भोपाल-462030 (मध्य प्रदेश)

इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम का पूर्वानुमान कठिन होता जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों से श्रमिकों का पलायन भी कृषि क्षेत्र के लिए बड़ी चुनौती बन चुका है। कोविड-19 महामारी के दौरान श्रमिकों की कमी ने यह स्पष्ट कर दिया कि कृषि को अधिक यांत्रिक एवं तकनीक आधारित बनाना आवश्यक है।

ड्रोन तकनीक इन चुनौतियों का प्रभावी समाधान प्रस्तुत करती है। इसके माध्यम से बड़े क्षेत्र में कम समय में कीटनाशकों एवं उर्वरकों का समान रूप से छिड़काव किया जा सकता है, जिससे कार्य की गति एवं दक्षता दोनों बढ़ती हैं। ड्रोन के उपयोग से श्रम लागत में लगभग 70-80 प्रतिशत तक कमी लाई जा सकती है, जो किसानों के लिए आर्थिक रूप से लाभकारी सिद्ध होती है।

इसके अतिरिक्त, यह तकनीक रसायनों का सटीक एवं आवश्यकतानुसार उपयोग सुनिश्चित करती है, जिससे अनावश्यक बर्बादी कम होती है तथा पर्यावरणीय प्रभाव भी घटता है। ड्रोन द्वारा फसल की स्थिति का वास्तविक समय में आकलन संभव है, जिससे किसान समय पर उचित निर्णय लेकर नुकसान को कम कर सकते हैं।

इस प्रकार, ड्रोन तकनीक खेती को अधिक वैज्ञानिक, सटीक, टिकाऊ एवं लाभकारी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

कृषि में ड्रोन के प्रमुख उपयोग

फसल निगरानी एवं स्वास्थ्य मूल्यांकन

ड्रोन में लगे मल्टीस्पेक्ट्रल कैमरे फसल के स्वास्थ्य की विस्तृत जानकारी प्रदान करते हैं। ये कैमरे दृश्य प्रकाश एवं निकट अवरक्त प्रकाश के माध्यम से पौधों की हरियाली, वृद्धि तथा तनाव की स्थिति का विश्लेषण करते हैं। यदि खेत के किसी भाग में कीट-रोग, पोषक तत्वों की कमी या जल तनाव की समस्या हो, तो ड्रोन द्वारा प्राप्त चित्रों के विश्लेषण से उसकी समय रहते पहचान की जा सकती है। इससे किसान शीघ्र उपचार कर फसल नुकसान को कम कर सकते हैं।

कृषि ड्रोन के प्रमुख लाभ

सटीक छिड़काव

ड्रोन के माध्यम से कीटनाशक, उर्वरक एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का निर्धारित मात्रा में सटीक छिड़काव किया जा सकता है। पारंपरिक विधियों में रसायनों की अधिक बर्बादी होती है तथा श्रमिकों के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ड्रोन तकनीक रसायनों के नियंत्रित एवं आवश्यकतानुसार उपयोग को सुनिश्चित करती है, जिससे लागत कम होती है तथा पर्यावरणीय प्रभाव घटता है।

इसके अतिरिक्त, पूरे खेत में समान रूप से छिड़काव होने से दवाइयों एवं उर्वरकों की प्रभावशीलता बढ़ती है तथा फसल में रासायनिक अवशेष कम रहते हैं। आधुनिक कृषि ड्रोन लगभग 10-15 मिनट में एक एकड़ क्षेत्र में छिड़काव करने में सक्षम हैं, जिससे समय एवं श्रम दोनों की बचत होती है।

सिंचाई प्रबंधन

जल, कृषि का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन है और कई क्षेत्रों में इसकी कमी गंभीर समस्या बन चुकी है। ड्रोन में लगे थर्मल सेंसर खेत के उन हिस्सों की पहचान कर सकते हैं, जहां मृदा में नमी की कमी होती है। इस जानकारी के आधार पर किसान आवश्यकता वाले क्षेत्रों में ही सिंचाई कर सकते हैं, जिससे जल उपयोग दक्षता बढ़ती है तथा ऊर्जा की बचत होती है।

ड्रोन द्वारा नियमित सर्वेक्षण से सिंचाई रिसाव एवं अधिक जलभराव वाले क्षेत्रों की पहचान भी संभव है, जिससे जल प्रबंधन अधिक प्रभावी बनता है।

भूमि सर्वेक्षण एवं मानचित्रण

ड्रोन तकनीक की सहायता से खेतों के 2डी एवं 3डी मानचित्र तैयार किए जा सकते हैं। इससे खेत की वास्तविक माप, ढाल, ऊंचाई एवं जल निकास की स्थिति का सटीक आकलन संभव होता है। यह जानकारी भूमि समतलीकरण, बुआई योजना एवं जल प्रबंधन के लिए अत्यंत उपयोगी होती है। बड़े किसानों एवं कृषि उद्यमियों के लिए यह तकनीक विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध हो रही है।

संभावनाएं

भविष्य में ड्रोन तकनीक, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एवं बिग डेटा के साथ एकीकृत होकर और अधिक प्रभावी एवं स्मार्ट बन जाएगी। उन्नत विश्लेषण प्रणालियों की सहायता से फसलों में रोग एवं कीट प्रकोप की पूर्व चेतावनी प्राप्त की जा सकेगी, जिससे किसान समय रहते आवश्यक कदम उठा सकेंगे। स्वचालित छिड़काव प्रणालियां आवश्यकता अनुसार स्वयं कार्य कर सकेंगी, जिससे संसाधनों की बचत एवं सटीकता दोनों में वृद्धि होगी। वास्तविक समय में फसल वृद्धि, पोषक तत्वों की स्थिति एवं जल आवश्यकता का विश्लेषण संभव होगा, जिससे निर्णय प्रक्रिया अधिक वैज्ञानिक बनेगी। इसके साथ ही, उत्पादन अनुमान एवं बाजार संबंधी सूचनाओं के आधार पर किसान बेहतर विपणन निर्णय ले सकेंगे। इस प्रकार डिजिटल तकनीकें न केवल कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होंगी, बल्कि सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति एवं टिकाऊ कृषि प्रणाली के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगी। बढ़ती जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन एवं सीमित प्राकृतिक संसाधनों के बीच कृषि को अधिक उत्पादक, लाभकारी एवं टिकाऊ बनाना समय की आवश्यकता है। ड्रोन तकनीक खेती के लिए 'आसमान में आंख' की तरह कार्य करती है, जो किसानों को सही समय पर सही निर्णय लेने में सहायता प्रदान करती है।

लाभ

ड्रोन के उपयोग से खेती में समय एवं श्रम दोनों की काफी बचत होती है, जिससे कृषि कार्य अधिक तेज एवं व्यवस्थित ढंग से सम्पन्न होते हैं। सटीक उर्वरक छिड़काव एवं निगरानी के कारण उत्पादन लागत कम होती है तथा संसाधनों का वैज्ञानिक एवं संतुलित उपयोग संभव होता है। रसायनों की नियंत्रित मात्रा के प्रयोग से पर्यावरण संरक्षण में भी सहायता मिलती है। ड्रोन द्वारा प्राप्त आंकड़ों के आधार पर किसान बेहतर एवं समयोचित निर्णय ले सकते हैं, जिससे फसल प्रबंधन अधिक प्रभावी बनता है। वहीं कस्टम हायरिंग सेंटर एवं सरकारी सहायता योजनाओं के माध्यम से छोटे एवं सीमांत किसान भी इस तकनीक का लाभ उठा सकते हैं। इस प्रकार ड्रोन खेती को श्रम-प्रधान प्रणाली से तकनीक प्रधान तथा पारंपरिक पद्धति से स्मार्ट कृषि की दिशा में आगे बढ़ा रहे हैं।

उपज का पूर्वानुमान

ड्रोन द्वारा प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से फसल उत्पादन का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। इससे किसान बाजार की बेहतर योजना बना सकते हैं तथा उचित समय पर फसल बेचकर अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

नीति एवं सरकारी पहल

भारत सरकार ने ड्रोन संचालन हेतु विभिन्न नीतियां एवं दिशा-निर्देश जारी किए हैं। ड्रोन उड़ान के लिए पंजीकरण, प्रशिक्षण एवं आयु संबंधी नियम निर्धारित किए गए हैं तथा उड़ान क्षेत्रों को रेड, येलो एवं ग्रीन जोन में विभाजित किया गया है।

ड्रोन से कृषि कार्य बने और प्रभावी

सरकार द्वारा कृषि ड्रोन के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए सब्सिडी एवं प्रोत्साहन योजनाएं भी संचालित की जा रही हैं। कई राज्यों में किसान उत्पादक संगठन एवं कस्टम हायरिंग केंद्रों के माध्यम से ड्रोन सेवाएं उपलब्ध करवाई जा रही हैं, ताकि छोटे एवं सीमांत किसान भी इस आधुनिक तकनीक का लाभ उठा सकें।

चुनौतियां

यद्यपि ड्रोन तकनीक कृषि क्षेत्र में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है, फिर भी इसके व्यापक प्रसार के सामने कई चुनौतियां मौजूद हैं। उन्नत कृषि ड्रोन की कीमत अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए इन्हें खरीदना कठिन हो सकता है। इसके संचालन एवं डेटा विश्लेषण हेतु तकनीकी ज्ञान और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, जो अभी ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं है।

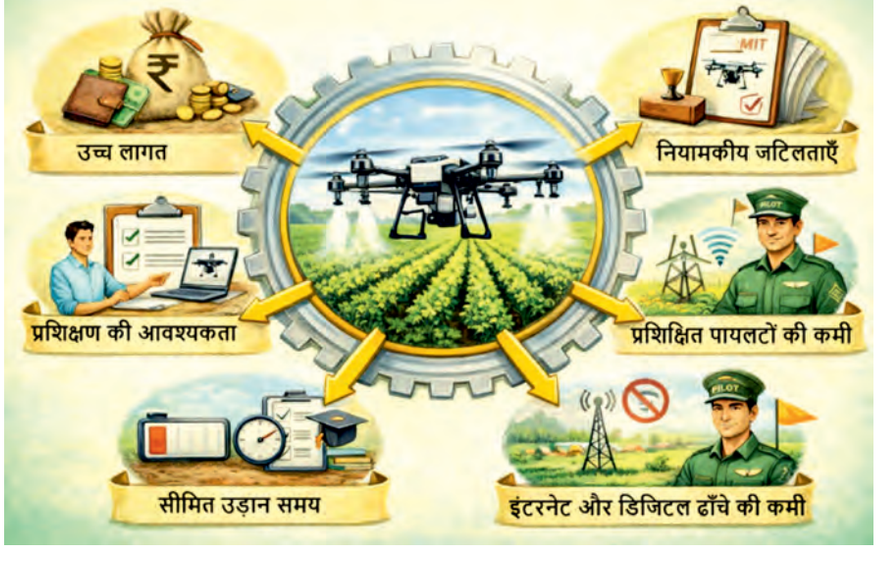

कृषि ड्रोन तकनीक की प्रमुख चुनौतियां

इसके अतिरिक्त, सीमित बैटरी क्षमता के कारण अधिकांश ड्रोन सामान्यतः 20-60 मिनट तक ही उड़ान भर पाते हैं, जिससे बड़े क्षेत्रों में कार्य के दौरान अतिरिक्त व्यवस्थाओं की आवश्यकता होती है। कई ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट एवं डिजिटल अवसंरचना की कमी भी इसके प्रभावी उपयोग में बाधा बनती है। साथ ही, लाइसेंस एवं अनुमति संबंधी प्रक्रियाएं तथा प्रशिक्षित पायलटों की कमी भी महत्वपूर्ण चुनौतियां हैं। इन समस्याओं का समाधान व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों, स्थानीय स्तर पर निर्माण को बढ़ावा देने, स्टार्टअप प्रोत्साहन एवं सरकारी सहयोग के माध्यम से किया जा सकता है, जिससे ड्रोन तकनीक का लाभ अधिक से अधिक किसानों तक पहुंच सके।

खेती की स्मार्ट दिशा

यह तकनीक कम समय एवं प्रभावी लागत में अधिक उत्पादन संभव बनाती है तथा खेती को अधिक वैज्ञानिक एवं स्मार्ट दिशा प्रदान करती है। यदि प्रशिक्षण, नीतिगत समर्थन एवं लागत संबंधी चुनौतियों का प्रभावी समाधान किया जाए, तो ड्रोन तकनीक भारतीय कृषि में नई क्रांति ला सकती है। यह किसानों की आय बढ़ाने, उत्पादन सुधारने एवं टिकाऊ कृषि व्यवस्था को सुदृढ़ करने का एक सशक्त माध्यम बन सकती है।

कम लागत में बीज अंकुरण का परीक्षण

कल्याणी कुमारी, कल्याणराव, पवित्रा वी., अंजनी कुमारी सिंह और **संजय कुमार**

"किसी भी फसल की सफलता का सबसे महत्वपूर्ण आधार बीज की गुणवत्ता होती है। किसान की मेहनत, लागत तथा उत्पादन काफी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि बोया गया बीज कितना स्वस्थ, जीवित एवं अंकुरण योग्य है। यदि बीज कमजोर हो, तो उन्नत खाद, सिंचाई एवं आधुनिक तकनीकों के उपयोग के बावजूद अपेक्षित उत्पादन प्राप्त नहीं हो पाता। अक्सर किसान बीज की गुणवत्ता को बिना जांचे ही बुआई कर देते हैं, लेकिन जब खेत में पौधों का अंकुरण कम होता है, तब उन्हें वास्तविक नुकसान का एहसास होता है। कम अंकुरण क्षमता वाले बीजों के कारण खेत में पौध संख्या में कमी हो जाती है, जिससे फसल वृद्धि, उत्पादन एवं लाभ सभी प्रभावित होते हैं। ऐसी स्थिति में बीज अंकुरण परीक्षण एक अत्यंत सरल, उपयोगी एवं आवश्यक प्रक्रिया बन जाती है। इसके माध्यम से यह पता लगाया जा सकता है कि बीजों में कितने प्रतिशत बीज स्वस्थ एवं अंकुरण योग्य हैं। यही कारण है कि बीज अंकुरण परीक्षण को कृषि उत्पादन की आधारभूत प्रक्रिया माना जाता है।"

वर्तमान समय में भी अधिकांश छोटे एवं मध्यम किसान प्रयोगशाला आधारित बीज परीक्षण सुविधाओं से वंचित हैं। ऐसे में यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि किसान स्वयं कम लागत में अपने बीज की गुणवत्ता की जांच किस प्रकार कर सकते हैं। इसी संदर्भ में यह लेख उपयोगी एवं सरल तकनीकों की जानकारी प्रस्तुत करता है, जिनकी सहायता से किसान घर अथवा खेत स्तर पर आसानी से बीज अंकुरण परीक्षण कर सकते हैं। इससे स्वस्थ पौध स्थापना सुनिश्चित होती है तथा बेहतर उत्पादन प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

भाकृअनुप–राष्ट्रीय बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, मऊ (उत्तर प्रदेश)

भावी दिशा

- **प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन:** कृषि विस्तार सेवाओं को इस तकनीक को किसान प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन कार्यक्रमों में शामिल करना चाहिए, ताकि अधिकाधिक किसान इसकी उपयोगिता समझ सकें।
- **सामुदायिक परीक्षण किट:** किसान समूह एवं स्वयं सहायता समूह सामुदायिक स्तर पर जूट बोरी आधारित बीज अंकुरण परीक्षण किट का रखरखाव एवं उपयोग कर सकते हैं।
- **बीज कार्यक्रमों में समावेशन:** सामुदायिक बीज वितरण अथवा बीज प्रतिस्थापन कार्यक्रमों से पहले इस विधि को प्रारंभिक जांच के रूप में अपनाया जाना चाहिए।
- **नीतिगत महत्व:** कृषि विस्तार कार्यक्रमों में कम लागत वाली बीज अंकुरण परीक्षण विधियों पर व्यावहारिक प्रशिक्षण को शामिल किया जाना चाहिए, ताकि किसानों के बीच इन तकनीकों का व्यापक प्रसार सुनिश्चित हो सके।

बीज अंकुरण परीक्षण

इस प्रक्रिया के माध्यम से यह निर्धारित किया जाता है कि बोए गए बीजों में से कितने बीज स्वस्थ पौधे बनने की क्षमता रखते हैं। इसे सामान्यत: अंकुरण प्रतिशत के रूप में व्यक्त

सारणी 1. विभिन्न फसलों की न्यूनतम अंकुरण क्षमता (भारतीय बीज प्रमाणन मानक, 2013)

फसल	न्यूनतम अंकुरण क्षमता (प्रतिशत)
गेहूं	85
धान	80
जौ	80
मूंग	75
चना	85
मटर	75
मसूर	75
लोबिया	75
सोयाबीन	70
सरसों	85

किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि 100 बीजों में से 85 बीज सफलतापूर्वक अंकुरित होते हैं, तो बीज का अंकुरण प्रतिशत 85 प्रतिशत माना जाता है।

मुख्य समस्या

सामान्यत: बीज अंकुरण परीक्षण प्रयोगशालाओं में किया जाता है, जहां विशेष उपकरण, नियंत्रित तापमान एवं अंकुरण पेपर जैसी सुविधाओं की आवश्यकता होती है। ग्रामीण क्षेत्रों के छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए इन प्रयोगशालाओं तक पहुंचना हमेशा आसान नहीं होता। समय, दूरी एवं अतिरिक्त खर्च के कारण अधिकांश किसान बीजों की जांच करवाए बिना ही बुआई कर देते हैं। परिणामस्वरूप कई बार खेत में अंकुरण कम होता है, पौध संख्या में कमी हो जाती है तथा फसल उत्पादन प्रभावित होता है। यही कारण है कि कम लागत एवं सरल बीज परीक्षण तकनीकों की आवश्यकता लगातार महसूस की जा रही है।

कम लागत में बीज परीक्षण

भाकृअनुप-राष्ट्रीय बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, मऊ में किए गए एक शोध अध्ययन में यह सिद्ध किया गया कि अखबार एवं जूट (टाट) की बोरी जैसे सस्ते और आसानी से उपलब्ध साधनों की सहायता से भी बीज अंकुरण परीक्षण सफलतापूर्वक किया जा सकता है। यह तकनीक विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए उपयोगी है, क्योंकि इससे वे घर अथवा खेत स्तर पर ही कम लागत में बीज की गुणवत्ता की जांच कर सकते हैं। इस अध्ययन में खाद्यान्न, दलहन एवं तिलहन वर्ग की कई प्रमुख फसलों को शामिल किया गया। खाद्यान्न फसलों में गेहूं, धान एवं जौ, दलहनी फसलों में मूंग, चना, मटर, मसूर एवं लोबिया तथा तिलहनी फसलों में सोयाबीन एवं सरसों को परीक्षण हेतु चयन किया गया।

अखबार में सरसों एवं गेहूं के बीजों का अंकुरण परीक्षण

सारणी 2. बीज अंकुरण परीक्षण में प्रयुक्त माध्यमों की तुलना

मापदंड	अंकुरण पेपर	अखबार	जूट की बोरी
लागत	अधिक (व्यावसायिक, प्रयोगशाला-ग्रेड सामग्री)	बहुत कम (घर में उपलब्ध, पुन: उपयोग योग्य कागज)	बहुत कम (स्थानीय रूप से उपलब्ध, बार-बार उपयोग योग्य)
उपलब्धता	केवल कृषि प्रयोगशालाओं या ऑनलाइन स्टोर तक सीमित	अधिकांश घरों में आसानी से उपलब्ध	ग्रामीण एवं कृषि परिवारों में सामान्य
जल धारण क्षमता	अत्यंत उत्तम	अच्छी	अच्छी, विशेषकर गीली रखने पर
मजबूती/टिकाऊपन	एक बार उपयोग योग्य	मध्यम, बार-बार गीला करने पर फट सकता है	अधिक, कई बार उपयोग योग्य
स्वच्छता	पूर्णत: स्वच्छ, फफूंद का जोखिम कम	स्वच्छ नहीं, फफूंद लगने की आशंका	स्वच्छ नहीं, सूक्ष्मजीव मौजूद हो सकते हैं
सतह की बनावट	चिकनी एवं समान	थोड़ी खुरदरी, कोमल अंकुर प्रभावित हो सकते हैं	खुरदरी, मुख्यत: आवरण के रूप में उपयोग
अंकुर अवलोकन की सुविधा	अत्यंत उत्तम, जड़ एवं तना स्पष्ट दिखाई देते हैं	मध्यम, जड़ें कागज से चिपक सकती हैं	प्रत्यक्ष अवलोकन कठिन
खेत की परिस्थितियों में उपयोग	व्यावहारिक नहीं	अत्यंत व्यावहारिक	अत्यंत व्यावहारिक
पर्यावरण अनुकूलता	जैव-अपघटक, लेकिन संसाधन-आधारित	अत्यंत पर्यावरण- अनुकूल एवं पुनर्चक्रण योग्य	जैव-अपघटक एवं पुन: उपयोग योग्य
उपयुक्तता	प्रयोगशाला एवं शोध कार्य	खेत स्तर पर छोटे पैमाने के परीक्षण हेतु उपयुक्त	खेत स्तर पर नमी बनाए रखने हेतु उपयुक्त
पुन: उपयोग	नहीं	सीमित (1-2 बार)	कई बार उपयोग संभव

पेपर एवं जूट की बोरी में विभिन्न बीजों का अंकुरण परीक्षण

अध्ययन में तीन प्रकार के माध्यमों का उपयोग किया गया, जिनमें प्रयोगशाला में प्रयुक्त अंकुरण पेपर, साधारण पुराना अखबार तथा जूट (टाट) की बोरी शामिल थे। परिणामों से यह पाया गया कि अखबार एवं जूट बोरी जैसे सस्ते माध्यम भी अंकुरण परीक्षण के लिए प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं।

अंकुरण पेपर विधि

इस विधि में सबसे पहले 100 बीज लिए जाते हैं। इसके बाद गीले अंकुरण पेपर पर बीजों को थोड़ी-थोड़ी दूरी पर रखा जाता है तथा ऊपर से अंकुरण पेपर की दूसरी गीली

परत से ढक दिया जाता है। दोनों परतों को हल्के घुमावदार रूप में लपेटकर छायादार स्थान पर रखा जाता है। परीक्षण के दौरान प्रतिदिन हल्की नमी बनाए रखना आवश्यक होता है। सामान्यत: फसल के अनुसार 7-10 दिनों बाद अंकुरित बीजों की संख्या गिनकर अंकुरण प्रतिशत ज्ञात किया जाता है।

अखबार विधि

इस विधि में पुराने एवं बिना चमक वाले अखबार की दो मोटी तहों को गीला किया जाता है। लगभग 100 बीज लेकर उन्हें अखबार की एक गीली तह पर थोड़ी दूरी पर रखा जाता है और ऊपर से दूसरी गीली तह से ढक दिया जाता है। इसके बाद दोनों तहों को हल्के घुमावदार तरीके से लपेटकर छायादार स्थान पर रखा जाता है। परीक्षण अवधि के दौरान अखबार में हल्की नमी बनाए रखना आवश्यक होता है। लगभग 7-10 दिनों बाद अंकुरित बीजों की संख्या गिनकर बीज की गुणवत्ता का आकलन किया जाता है।

जूट (टाट) बोरी विधि

इस विधि में साफ एवं स्वच्छ जूट की बोरी के दो आयताकार टुकड़े लिए जाते हैं। बीजों को गीली जूट बोरी के एक टुकड़े पर थोड़ी दूरी पर रखा जाता है और ऊपर से दूसरी गीली बोरी से ढक दिया जाता है। इसके बाद बोरी को मोड़कर छायादार स्थान पर रखा जाता है तथा समय-समय पर नमी बनाए रखी जाती है। निर्धारित समय के बाद अंकुरित बीजों की संख्या देखकर अंकुरण प्रतिशत का मूल्यांकन किया जाता है।

किसानों के लिए महत्व

वर्तमान समय में अनेक किसान स्वयं का बचाया हुआ बीज उपयोग करते हैं। ऐसी स्थिति में बीज की गुणवत्ता की जांच अत्यंत आवश्यक हो जाती है। यह सरल एवं कम लागत वाली तकनीक किसानों को आत्मनिर्भर बनाने के साथ-साथ अनावश्यक बीज खर्च को भी कम करती है। बीज अंकुरण परीक्षण के माध्यम से किसान, बुआई से पहले ही यह निर्णय ले सकते हैं कि बीज उपयुक्त है या उसे बदलने की आवश्यकता है। इससे खेत में पौध संख्या सुनिश्चित होती है तथा बेहतर फसल स्थापना संभव होती है।

अखबार एवं जूट की बोरी द्वारा किया जाने वाला बीज अंकुरण परीक्षण किसानों के लिए एक सरल, सस्ता एवं भरोसेमंद विकल्प है। यद्यपि प्रमाणन हेतु प्रयोगशाला आधारित परीक्षण आवश्यक हैं, फिर भी खेत स्तर पर त्वरित निर्णय लेने के लिए ये विधियां अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

यदि कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि विभाग एवं विस्तार सेवाएं किसानों को इन तकनीकों का प्रशिक्षण प्रदान करें, तो किसान बीज गुणवत्ता प्रबंधन के क्षेत्र में अधिक आत्मनिर्भर बन सकते हैं तथा फसल उत्पादन में स्थिरता एवं सफलता सुनिश्चित कर सकते हैं।

बीज अंकुरण की जूट बोरी विधि

शोध परिणाम

अध्ययन के परिणामों से यह स्पष्ट हुआ कि अधिकांश फसलों में अंकुरण प्रतिशत तीनों माध्यमों-अंकुरण पेपर, अखबार एवं जूट बोरी में लगभग समान पाया गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि कम लागत वाले स्थानीय साधनों की सहायता से भी बीज अंकुरण परीक्षण प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। अखबार एवं जूट बोरी विधियों के कई महत्वपूर्ण लाभ सामने आए। इन विधियों में लगभग नगण्य खर्च आता है तथा किसी विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं होती। गांव स्तर पर आसानी से उपलब्ध सामग्री के उपयोग से किसान स्वयं यह परीक्षण कर सकते हैं और इसके लिए किसी विशेष तकनीकी प्रशिक्षण की भी आवश्यकता नहीं होती। यह तकनीक किसानों को खेत स्तर पर त्वरित निर्णय लेने में सहायता करती है। इसके माध्यम से किसान यह निर्धारित कर सकते हैं कि बीज बोने योग्य है या नहीं, बीज दर बढ़ाने की आवश्यकता है अथवा नहीं तथा संभावित फसल जोखिम कितना हो सकता है। इससे फसल असफलता की आशंका कम होती है और उत्पादन अधिक स्थिर बनता है।

बीज अंकुरण की अखबार विधि

1. कृषि-प्रसंस्करण इकाई

(जैसे– टमाटर सॉस, अचार, जूस, आटा मिल आदि)

2. कोल्ड स्टोरेज / शीत श्रृंखला

(फल, सब्जी, दूध आदि का सुरक्षित भंडारण)

3. पैकेजिंग एवं लेबलिंग

(उत्पाद को आकर्षक और सुरक्षित बनाना)

4. परिवहन एवं लॉजिस्टिक्स

(उत्पाद को बाजार तक पहुँचाना)

5. गोदाम एवं भंडारण

(अनाज, दाल, तिलहन का दीर्घकालिक भंडारण)

6. विपणन एवं बिक्री

(खुदरा, थोक, ऑनलाइन और निर्यात)

मूल्य श्रृंखला और गौण उद्यम से भरपूर अवसर

सर्वेश कुमार

कृषि क्षेत्र में किसानों की आय वृद्धि तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण के लिए कृषि मूल्य श्रृंखला एवं द्वितीयक (गौण) उद्यमों का विकास अत्यंत महत्वपूर्ण है। कृषि मूल्य श्रृंखला उत्पादन से लेकर प्रसंस्करण, भंडारण, परिवहन, विपणन और उपभोग तक की परस्पर जुड़ी गतिविधियों का एक समन्वित तंत्र है, जिसमें प्रत्येक चरण पर उत्पाद का मूल्य संवर्धन होता है। इस प्रक्रिया से कृषि उत्पादों की गुणवत्ता, उपयोगिता एवं बाजार प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होती है। द्वितीयक उद्यम जैसे कृषि प्रसंस्करण इकाइयां, कोल्ड स्टोरेज, पैकेजिंग, लॉजिस्टिक्स एवं विपणन सेवाएं उत्पादों के प्रभावी प्रबंधन और मूल्य संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनके विस्तार से फसल कटाई के बाद होने वाली हानि कम होती है, उत्पादों को बेहतर बाजार मिलता है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार एवं उद्यमिता के नए अवसर सृजित होते हैं।

कृषि मूल्य श्रृंखला का सुदृढ़ीकरण एवं द्वितीयक उद्यमों का विकास न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक है, बल्कि समावेशी एवं सतत ग्रामीण विकास की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम है।

मूल्य संवर्धन

प्रसंस्करण क्रियाओं द्वारा किसी कच्चे उत्पाद या कृषि वस्तु के मूल स्वरूप को इस प्रकार बदलना या सुधारना कि उसकी आर्थिक कीमत बढ़ जाए, उसे मूल्य संवर्धन कहा जाता है। इससे उत्पाद की गुणवत्ता, उपयोगिता एवं बाजार में मांग बढ़ती है, जिससे किसानों एवं अन्य हितधारकों को अधिक लाभ प्राप्त होता है। कृषि क्षेत्र में मूल्य संवर्धन के कई प्रभावी उपाय हैं, जो उत्पाद की गुणवत्ता और बाजार मूल्य बढ़ाने में सहायक होते हैं।

असिस्टेंट प्रोफेसर, कृषि अर्थशास्त्र विभाग, श्री दुर्गा जी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आजमगढ़ (उत्तर प्रदेश)

सबसे पहला उपाय है प्रसंस्करण, जिसमें उत्पाद की सफाई, छंटाई, पकाना, सुखाना या पैकेजिंग जैसी क्रियाएं शामिल होती हैं। इससे उत्पाद की शुद्धता एवं टिकाऊपन बढ़ता है। दूसरा महत्वपूर्ण उपाय है ग्रेडिंग, जिसके अंतर्गत उत्पाद को उसकी गुणवत्ता के

सारणी 1. मूल्य श्रृंखला की प्रमुख गतिविधियां

गतिविधि	कार्य	उदाहरण
कारक आपूर्ति	बीज, उर्वरक, उपकरण आदि की उपलब्धता सुनिश्चित करना	बीज कंपनियां, उर्वरक विक्रेता, कृषि यंत्र आपूर्तिकर्ता
उत्पादन	फसलों की बुआई, सिंचाई, देखभाल एवं कटाई जैसे कार्य	बुआई, रोपाई, सिंचाई, पोषण प्रबंधन, रोग नियंत्रण, कटाई, पशुपालन
प्रसंस्करण	उत्पाद को उपभोग योग्य रूप में परिवर्तित करना	आटा चक्की, दुग्ध पाश्चुरीकरण इकाइयां, मांस प्रसंस्करण इकाइयां
भंडारण	कृषि उत्पाद को सुरक्षित एवं संरक्षित रखना	कोल्ड स्टोरेज, गोदाम, वेयरहाउस
परिवहन/लॉजिस्टिक्स	उत्पाद को बाजार या उपभोक्ता तक पहुंचाना	ट्रक, रेल, टेम्पो, कोल्ड चेन
विपणन एवं बिक्री	उत्पाद को बाजार में बेचने एवं उपभोक्ता तक पहुंचाने की प्रक्रिया	मंडी, सुपरमार्केट, निर्यात चैनल
उपभोग	अंतिम उपभोक्ता द्वारा उत्पाद का उपयोग	घरेलू उपयोग, होटल, संस्थान

कृषि मूल्य श्रृंखलाओं के प्रमुख खंड एवं संबंधित हितधारक

कृषि मूल्य श्रृंखला एक बहुस्तरीय एवं समन्वित प्रक्रिया है, जो कारक आपूर्ति से लेकर अंतिम उपभोक्ता तक कृषि उत्पाद की यात्रा को विभिन्न चरणों में जोड़ती है। इस श्रृंखला में कई प्रकार के हितधारक शामिल होते हैं, जो उत्पादन, प्रसंस्करण, भंडारण, परिवहन एवं विपणन के प्रत्येक स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत जैसे विविध कृषि संरचना वाले देश में इन सभी खंडों एवं इनसे जुड़े हितधारकों का महत्व और भी बढ़ जाता है। बीज एवं उर्वरक आपूर्तिकर्ता, किसान, कृषि विस्तार सेवाएं, प्रसंस्करण इकाइयां, भंडारण एवं लॉजिस्टिक्स प्रदाता, व्यापारी, खुदरा विक्रेता तथा उपभोक्ता सभी मिलकर इस श्रृंखला को सुदृढ़ बनाते हैं। प्रत्येक हितधारक अपने स्तर पर उत्पाद की गुणवत्ता, मूल्य संवर्धन तथा बाजार तक पहुंच सुनिश्चित करता है। इनके बीच समन्वय एवं सहयोग जितना बेहतर होता है, कृषि मूल्य श्रृंखला उतनी ही प्रभावी, लाभकारी एवं टिकाऊ बनती है।

कच्चे कृषि उत्पाद को प्रसंस्करण पैकेजिंग और ब्रांडिंग के माध्यम से अधिक मूल्यवान बनाना

द्वितीयक उद्यमों की प्रमुख गतिविधियां

- **प्रसंस्करण:** कृषि उत्पादों को उपभोक्ता के लिए उपयुक्त बनाने हेतु विभिन्न तकनीकी प्रक्रियाओं से गुजरना प्रसंस्करण कहलाता है। इसमें सफाई, छंटाई, ग्रेडिंग, कटाई, पाश्चुरीकरण, सुखाना, पकाना तथा गुणवत्ता नियंत्रण जैसी प्रक्रियाएं शामिल होती हैं, जिससे उत्पाद की गुणवत्ता और उपयोगिता बढ़ती है।
- **भंडारण:** कृषि उत्पादों को उचित तापमान, आर्द्रता एवं अन्य अनुकूल परिस्थितियों में सुरक्षित रखना भंडारण का मुख्य उद्देश्य है। इससे उत्पाद खराब होने से बचता है, कटाई उपरांत हानि कम होती है और आपूर्ति में निरंतरता बनी रहती है। कोल्ड स्टोरेज एवं गोदाम इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
- **पैकेजिंग:** इस श्रृंखला के के माध्यम से कृषि उत्पादों को सुरक्षित, आकर्षक एवं परिवहन के अनुकूल बनाया जाता है। यह उत्पाद की गुणवत्ता एवं ताजगी बनाए रखने के साथ-साथ उपभोक्ता को आवश्यक जानकारी प्रदान करती है। आधुनिक तकनीकों में बायोडिग्रेडेबल, स्मार्ट एवं वैक्यूम पैकेजिंग का उपयोग बढ़ रहा है।
- **परिवहन एवं लॉजिस्टिक्स:** कृषि उत्पादों को खेत से बाजार, प्रसंस्करण इकाइयों, भंडारण स्थलों एवं उपभोक्ताओं तक पहुंचाने की प्रणाली को परिवहन एवं लॉजिस्टिक्स कहा जाता है। इसमें सड़क, रेल, जलमार्ग एवं वायु परिवहन शामिल होते हैं। प्रभावी लॉजिस्टिक्स से उत्पाद की गुणवत्ता सुरक्षित रहती है और लागत में कमी आती है।
- **विपणन एवं बिक्री:** इसके अंतर्गत उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुंचाने की पूरी प्रक्रिया आती है, जिसमें ब्रांडिंग, मूल्य निर्धारण, वितरण चैनल प्रबंधन, विज्ञापन एवं ग्राहक सेवा शामिल हैं। आधुनिक समय में डिजिटल प्लेटफॉर्म, ई-कॉमर्स एवं मोबाइल आधारित विपणन का महत्व तेजी से बढ़ रहा है।

इस प्रकार, द्वितीयक उद्यम कृषि उत्पादों के मूल्य संवर्धन, गुणवत्ता सुधार एवं बाजार विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिससे किसानों की आय में वृद्धि और ग्रामीण विकास को नई गति मिलती है।

आधार पर वर्गीकृत किया जाता है, जिससे उपभोक्ताओं को बेहतर विकल्प मिलते हैं और किसानों को उचित मूल्य प्राप्त होता है।

इसके बाद पैकेजिंग का महत्व आता है, जो न केवल उत्पाद को सुरक्षित रखती है, बल्कि उसकी आकर्षक प्रस्तुति के माध्यम से बिक्री बढ़ाने में भी सहायक होती है। उचित सामग्री एवं डिजाइन का उपयोग उत्पाद को नुकसान से बचाने के साथ-साथ उपभोक्ताओं का ध्यान आकर्षित करता है।

भंडारण भी मूल्य संवर्धन का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसमें उत्पाद को उपयुक्त तापमान एवं नमी स्तर पर सुरक्षित रखा जाता है, ताकि वह लंबे समय तक ताजा एवं उपयोग योग्य बना रहे। इसके साथ ही ब्रांडिंग उत्पाद की पहचान बनाने और बाजार में एक विशिष्ट छवि स्थापित करने में सहायक होती है, जिससे उपभोक्ताओं का विश्वास बढ़ता है और मांग में वृद्धि होती है।

अंततः लॉजिस्टिक्स का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसके माध्यम से उत्पाद को सही समय पर और उचित स्थिति में बाजार या उपभोक्ता तक पहुंचाया जाता है। यह पूरी प्रक्रिया मूल्य संवर्धन को प्रभावी बनाती है। इससे उत्पाद की बाजार तक पहुंच और बिक्री सुनिश्चित होती है।

इस प्रकार, ये सभी उपाय मिलकर कृषि उत्पादों की गुणवत्ता, टिकाऊपन और बाजार मूल्य में वृद्धि करते हैं, जिससे किसानों, उत्पादकों एवं अन्य संबंधित पक्षों को अधिक लाभ प्राप्त होता है।

मूल्य श्रृंखला

मूल्य श्रृंखला व्यवसाय प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जो किसी उत्पाद या सेवा के निर्माण में शामिल सभी गतिविधियों की श्रृंखला का वर्णन करती है। यह कच्चे उत्पाद से लेकर अंतिम उत्पाद या सेवा के

उपभोक्ता तक पहुंचने की पूरी प्रक्रिया पर केंद्रित होती है।

कृषि मूल्य श्रृंखला

कृषि मूल्य श्रृंखला में उत्पादन से लेकर प्रसंस्करण, विपणन और उपभोग तक की सभी मूल्यवर्धित गतिविधियां शामिल होती हैं। इस श्रृंखला के प्रत्येक चरण में अग्र एवं पश्च लिंकेज होते हैं, जो विभिन्न घटकों को आपस में जोड़ते हैं।

इस संदर्भ में मूल्य श्रृंखला को उन गतिविधियों की श्रृंखला के रूप में समझा जाता है, जिनके माध्यम से उत्पादन से उपभोग तक उत्पाद का मूल्य लगातार बढ़ता जाता है। कृषि में यह उन सभी कार्यकर्ताओं और प्रक्रियाओं का समन्वित समूह है, जो किसी उत्पाद को खेत से उपभोक्ता तक पहुंचाते हैं, जहां प्रत्येक स्तर पर मूल्य संवर्धन होता है।

कृषि मूल्य श्रृंखला में बीज, उर्वरक एवं अन्य आदानों की आपूर्ति जैसी गतिविधियां, जो उत्पादन इकाई की ओर होती हैं, 'बैक एंड' या 'अपस्ट्रीम' गतिविधियां कहलाती हैं। वहीं प्रसंस्करण, भंडारण, लॉजिस्टिक्स, थोक एवं खुदरा विपणन जैसी गतिविधियां, जो उपभोक्ता तक पहुंचाने से संबंधित हैं, 'फ्रंट एंड' या 'डाउन स्ट्रीम' गतिविधियां कही जाती हैं।

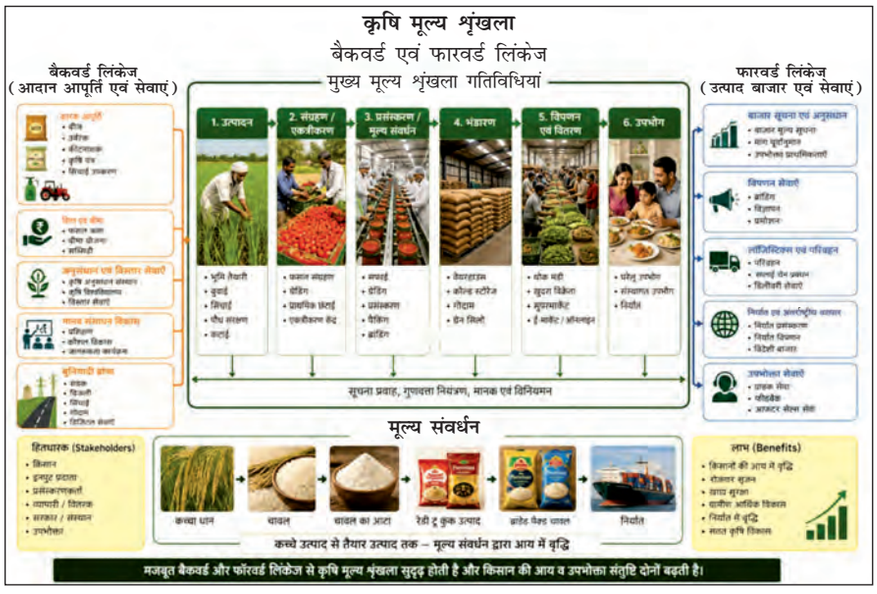

मजबूत बैकवर्ड और फॉरवर्ड लिंकेज से कृषि मूल्य श्रृंखला सुदृढ़ होती है और किसान की आय व उपभोक्ता संतुष्टि बढ़ती है

संस्थागत व्यवस्थाएं जैसे अनुबंध खेती एवं उत्पादक संगठनों के माध्यम से इन 'बैक एंड' एवं 'फ्रंट एंड' गतिविधियों का समेकन किया जाता है, जिससे व्यवसाय का विस्तार होता है और किसानों को बेहतर बाजार एवं मूल्य प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

संरचना

कृषि मूल्य श्रृंखला को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: प्राथमिक गतिविधियां और सहायक गतिविधियां।

प्राथमिक गतिविधियां

वे आर्थिक क्रियाएं हैं, जो प्राकृतिक संसाधनों के प्रत्यक्ष उपयोग से संबंधित होती हैं। ये किसी भी अर्थव्यवस्था का आधार मानी जाती हैं, क्योंकि इनके माध्यम से कच्चे माल का उत्पादन या निष्कर्षण किया जाता है।

कृषि संदर्भ में इन गतिविधियों में फसल उत्पादन, पशुपालन, मत्स्य पालन, वानिकी तथा खनन आदि शामिल हैं। इनसे प्राप्त कच्चे उत्पाद आगे प्रसंस्करण एवं विपणन के माध्यम से द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों में उपयोग किए जाते हैं, जहां उनका मूल्य संवर्धन होता है।

सहायक गतिविधियां

वे क्रियाएं जो प्राथमिक गतिविधियों को प्रभावी एवं सुचारु रूप से संचालित करने में सहयोग प्रदान करती हैं। ये प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन से जुड़ी नहीं होतीं, किन्तु संपूर्ण मूल्य श्रृंखला की दक्षता, गुणवत्ता एवं प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

कृषि मूल्य श्रृंखला में सहायक गतिविधियों के अंतर्गत अनुसंधान एवं विकास, तकनीकी सहयोग, वित्तीय सेवाएं, मानव संसाधन प्रबंधन, आधारभूत संरचना तथा सूचना एवं संचार

सारणी 2. कृषि में सहायक गतिविधियों का विवरण

सहायक गतिविधि	विवरण	उदाहरण
बुनियादी ढांचा	सड़कें, बिजली, सिंचाई आदि जैसी आधारभूत सुविधाएं	ग्रामीण सड़कें, नहरें, बिजली आपूर्ति
तकनीकी विकास एवं अनुसंधान	कृषि तकनीक, नवाचार एवं सुधार	हाइब्रिड बीज, ड्रोन, मृदा जांच
मानव संसाधन विकास	किसानों एवं कर्मियों का प्रशिक्षण एवं क्षमता निर्माण	कृषि विस्तार सेवाएं, प्रशिक्षण कार्यक्रम, कार्यशालाएं
वित्त एवं निवेश	कृषि कार्यों हेतु पूंजी, ऋण एवं वित्तीय सहायता	कृषि ऋण, बीमा, सहकारी बैंक
नीति एवं शासन	कृषि से संबंधित सरकारी नीतियां एवं नियम	न्यूनतम समर्थन मूल्य, सरकारी योजनाएं, नियामक प्रावधान
खरीद/प्रोक्योरमेंट	संसाधनों एवं उत्पादों की खरीद प्रक्रिया	अनुबंध खेती, थोक खरीद, आपूर्ति प्रबंधन

सारणी 3. कृषि मूल्य श्रृंखलाओं के प्रमुख खंड एवं संबंधित हितधारक

मूल्य श्रृंखला खंड	हितधारक
कारक आपूर्तिकर्ता	बीज कंपनियां, उर्वरक कंपनियां, कृषि रसायन कंपनियां, कृषि यंत्र आपूर्तिकर्ता, खुदरा इनपुट विक्रेता
उत्पादक (किसान)	लघु एवं सीमांत किसान, मध्यम एवं बड़े किसान, किसान उत्पादक संगठन (FPO), सहकारी संस्थाएं
मध्यस्थ/एकत्रकर्ता	ग्राम स्तरीय व्यापारी, मंडियां (APMC), कमीशन एजेंट, एग्रीगेटर कंपनियां
प्रसंस्करणकर्ता एवं मूल्य संवर्धक	कृषि प्रसंस्करण कंपनियां, खाद्य उत्पादक कंपनियां, डेयरी प्रोसेसर, चावल/गेहूं मिल संचालक
वितरक, खुदरा विक्रेता एवं उपभोक्ता	खुदरा श्रृंखला, ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म, निर्यातक, अंतिम उपभोक्ता
सहायक संस्थाएं	सरकारी निकाय, वित्तीय संस्थान, अनुसंधान संस्थान, कृषि-प्रौद्योगिकी प्रदाता, एनजीओ एवं विकास संगठन

प्रणाली शामिल होती हैं। इन गतिविधियों के माध्यम से उत्पादन प्रक्रिया अधिक संगठित, कुशल एवं लाभकारी बनती है, जिससे संपूर्ण कृषि तंत्र को मजबूती मिलती है।

कृषि क्षेत्र में द्वितीयक (गौण) उद्यम

द्वितीयक (गौण) उद्यम वे विनिर्माण एवं सेवा आधारित गतिविधियां हैं, जो कृषि उत्पाद के प्राथमिक उत्पादन के बाद मूल्य संवर्धन, प्रसंस्करण, भंडारण, परिवहन एवं विपणन से जुड़ी होती हैं। ये उद्यम कृषि मूल्य शृंखला की समग्र दक्षता एवं उत्पादकता को बढ़ाते हैं। साथ ही कृषि उपज की गुणवत्ता, बाजार तक पहुंच और आर्थिक मूल्य में वृद्धि करते हैं। परिणामस्वरूप, ये किसानों की आय बढ़ाने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सारणी 4. द्वितीयक उद्यमों के प्रकार एवं कार्यात्मक भूमिका

उद्यम का प्रकार	कार्यात्मक भूमिका	उदाहरण
कृषि-प्रसंस्करण इकाइयां	कृषि उत्पादों की सफाई वर्गीकरण, प्रसंस्करण एवं पैकेजिंग के माध्यम से मूल्य संवर्धन	अमूल, आईटीसी
कोल्ड स्टोरेज एवं शीत शृंखला	नियंत्रित तापमान एवं आर्द्रता में फल, सब्जी एवं दुग्ध उत्पादों का संरक्षण	स्नोमैन लॉजिस्टिक्स, देहात
गोदाम एवं भंडारण सुविधाएं	कृषि उपज के सुरक्षित एवं दीर्घकालिक भंडारण की व्यवस्था	सरकारी एवं निजी गोदाम
लॉजिस्टिक्स एवं परिवहन सेवाएं	उत्पादों को उत्पादन स्थल से बाजार एवं उपभोक्ता तक पहुंचाने की प्रणाली	निंजाकार्ट, समुन्नति
कारक आपूर्ति एवं रिटेलर	बीज, उर्वरक, कीटनाशक एवं कृषि यंत्रों की आपूर्ति एवं विक्रय	स्थानीय कृषि डीलर, कृषि सेवा केंद्र
विपणन एवं निर्यात कंपनियां	ब्रांड निर्माण, विपणन, मूल्य निर्धारण एवं निर्यात प्रबंधन	एपीडा, निर्यात हाउस

द्वितीयक उद्यमों का महत्व एवं प्रभाव

- **मूल्य संवर्धन एवं उत्पाद गुणवत्ता में वृद्धि:** द्वितीयक उद्यम कृषि उपज के भौतिक एवं गुणात्मक परिवर्तन के माध्यम से उत्पाद की उपभोक्ता मांग और बाजार मूल्य को बढ़ाते हैं, जिससे किसानों को अधिक लाभ प्राप्त होता है।
- **फसल कटाई उपरांत बेहतर प्रबंधन:** आधुनिक भंडारण एवं प्रसंस्करण तकनीकों के उपयोग से उपज के खराब होने की आशंका कम होती है, जिससे खाद्य सुरक्षा सुदृढ़ होती है।
- **ग्रामीण आर्थिक सशक्तिकरण एवं रोजगार सृजन:** ये उद्यम ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार एवं औद्योगिक रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं, जिससे सामाजिक एवं आर्थिक विकास को बल मिलता है।
- **किसान और बाजार के बीच समन्वय:** द्वितीयक उद्यम किसानों को बेहतर विपणन चैनल एवं उचित मूल्य उपलब्ध करवाते हैं, जिससे उनकी आय में स्थिरता एवं वृद्धि होती है।
- **खाद्य आपूर्ति शृंखला की विश्वसनीयता:** ये उद्यम खाद्य सामग्री की सतत, गुणवत्तापूर्ण एवं समयबद्ध उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं, जो राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक है। ■

भाकृअनुप की द्विमासिक बागवानी पत्रिका
'फल फूल' मई-जून, 2026 अंक के प्रमुख आकर्षण

- हरी पत्तेदार सब्जियों के फायदे अनेक
- पुष्प उत्पादन में जीनोम संपादन
- सब्जियों की पौधशाला का प्रबंधन
- पर्वतीय क्षेत्रों में पॉलीहाउस में टमाटर की खेती
- मूल्यवर्धित आंवला का टिकाऊ उत्पादन
- मशरूम से भरपूर पोषण
- गुणों से भरपूर माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन
- पंचकुट्टा-थार मरूस्थल की पारंपरिक खाद्य प्रणाली
- देसी फलों का महत्व एवं संरक्षण
- जीरे की उन्नत बीज उत्पादन तकनीक
- शुष्क क्षेत्रों हेतु बेहद उपयोगी कैर
- पुष्पोत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव
- स्वास्थ पौध उत्पादन हेतु सनकन नर्सरी
- आम में अनियमित फलन की चुनौती का प्रबंधन
- सब्जियों की संरक्षित खेती हेतु पॉलीहाउस तकनीक
- मई-जून के बागवानी कार्य

संपर्क सूत्र: प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष: 25843657, www.icar.org.in

ग्रीष्म ऋतु में खरगोश पालन

सन्तोष कुमार, पल्लवी चौहान, अब्दुल रहीम और **आर. पुरुषोत्तमन**

" भारत में खरगोश पालन एक नया और तेजी से उभरता हुआ व्यवसाय है। खरगोशों में तीव्र प्रजनन क्षमता एवं तेज वृद्धि का गुण पाया जाता है। मादा खरगोश एक बार में 6 से 8 शावकों को जन्म देती है तथा एक वर्ष में 4 से 6 बार प्रजनन कर सकती है। इनका गर्भकाल औसतन 31 (28 से 34) दिनों का होता है, जिसके कारण इनकी संख्या तेजी से बढ़ती है। खरगोशों को कम स्थान एवं घरेलू चारा-दाना पर आसानी से पाला जा सकता है। वहीं अंगोरा खरगोशों का पालन मुख्य रूप से ऊन उत्पादन के लिए किया जाता है। इनसे सर्वाधिक ऊन एवं शावक बसंत ऋतु (मार्च से मई) तथा शरद ऋतु (सितंबर से नवंबर) में प्राप्त होते हैं। अत्यधिक गर्मी अंगोरा खरगोश पालन के लिए हानिकारक होती है। अधिक तापमान के कारण अंगोरा खरगोशों में लगभग एक-चौथाई तक ऊन एवं शावक उत्पादन में कमी आ सकती है। गर्मी के कारण उत्पादन क्षमता पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को वैज्ञानिक भाषा में 'ग्रीष्म तनाव' कहा जाता है। यदि गर्मी के मौसम में ग्रीष्म तनाव का समय पर प्रबंधन न किया जाए, तो ऊन उत्पादन में कमी, शावकों की संख्या में कमी तथा मृत्यु दर में वृद्धि हो सकती है, जिससे किसानों की आय प्रभावित होती है। इसलिए खरगोश पालकों के लिए ग्रीष्म तनाव के कारणों, प्रभावों एवं उसके प्रबंधन की जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है। "

खरगोश पालन मुख्य रूप से मांस एवं ऊन उत्पादन के लिए किया जाता है। खरगोश से प्राप्त ऊन उच्च गुणवत्ता की होती है, जिसका उपयोग शॉल, मफलर, स्कार्फ, बच्चों के स्वेटर, दस्ताने, मोजे तथा टोपी जैसे गर्म वस्त्र बनाने में किया जाता है।

खरगोश की ऊन को भेड़ की ऊन, रेशम एवं कृत्रिम रेशों के साथ मिश्रित कर मुलायम और गर्म वस्त्र भी तैयार किए जाते हैं। दूसरी ओर, खरगोश का मांस प्रोटीन से भरपूर तथा कम वसा वाला होता है, इसलिए इसे स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी माना जाता है। इसी कारण खरगोश पालन मांस एवं ऊन अथवा दोनों के उत्पादन हेतु किया जाता है।

उत्तरी शीतोष्ण क्षेत्रीय केंद्र, केंद्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, गड़सा, कुल्लू-175141

भारत में ऊन उत्पादन के लिए खरगोश की जर्मन अंगोरा, ब्रिटिश अंगोरा तथा फ्रेंच अंगोरा जैसी नस्लों का पालन किया जाता है। इनमें जर्मन अंगोरा नस्ल उत्तरी शीतोष्ण क्षेत्रों के लिए सबसे उपयुक्त मानी जाती है। इसलिए इस नस्ल का पालन मुख्यत: हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, लेह-लद्दाख एवं उत्तराखंड जैसे ठंडे क्षेत्रों में किया जाता है। वहीं मांस एवं खाल उत्पादन के लिए न्यूजीलैंड व्हाइट, सोवियत चिंचिला, व्हाइट जायंट तथा ग्रे जायंट नस्लों का पालन देश के अन्य भागों में किया जाता है।

प्रभाव

ग्रीष्म तनाव की स्थिति में खरगोश चारा-दाना कम मात्रा में ग्रहण करते हैं, जिसके कारण शरीर को आवश्यक ऊर्जा, प्रोटीन एवं अन्य पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाते। परिणामस्वरूप शरीर भार वृद्धि प्रभावित होती है।

ग्रीष्म तनाव का प्रतिकूल प्रभाव नर एवं मादा दोनों खरगोशों के प्रजनन पर पड़ता है। मादा खरगोशों में गर्भधारण दर कम हो जाती है तथा भ्रूण का विकास प्रभावित हो सकता है। इसके कारण शावकों की संख्या एवं जन्म के समय उनका वजन कम हो जाता है। मृत शावकों की संख्या में भी वृद्धि देखी जाती है। इसके अतिरिक्त, मादा खरगोशों में दूध उत्पादन कम हो जाता है, जिससे शावकों का विकास कमजोर रह जाता है।

अंगोरा खरगोशों में ग्रीष्म तनाव का प्रभाव ऊन उत्पादन पर भी पड़ता है। अधिक तापमान के कारण ऊन की वृद्धि दर कम हो जाती है

तथा ऊन की गुणवत्ता प्रभावित होती हैए जिससे उत्पादन एवं आय दोनों में कमी आ सकती है।

ग्रीष्म ऋतु में मादा खरगोशों में शावकों को जन्म देने की क्षमता में कमी देखी जाती है। साथ ही जन्म के समय शावकों का शरीर भार भी अपेक्षाकृत कम होता है। सामान्यत: शावकों को 40 से 45 दिनों की आयु में मादा से अलग किया जाता है। अध्ययन में पाया गया कि ग्रीष्म ऋतु में जन्मे शावकों में 40 से 45 दिनों की आयु तक मृत्यु दर लगभग 14.9 प्रतिशत रही, जो बसंत एवं शरद ऋतु की तुलना में लगभग दोगुनी है।

शीत ऋतु के बाद तापमान में धीरे-धीरे वृद्धि होने लगती है, जिसका प्रभाव अंगोरा शावकों की वृद्धि दर पर दिखाई देता है। ग्रीष्म ऋतु में शावकों की शरीर भार वृद्धि दर शीत ऋतु की तुलना में लगभग 11.9 प्रतिशत कम पाई गई। इस कारण ग्रीष्म ऋतु में खरगोशों के लिए विशेष प्रबंधन एवं ताप नियंत्रण उपाय अपनाना आवश्यक होता है।

मांस उत्पादन एवं गुणवत्ता पर प्रभाव

ग्रीष्म तनाव के कारण खरगोशों में मांस उत्पादन तथा उसकी गुणवत्ता दोनों प्रभावित होती हैं। अधिक तापमान के कारण खरगोश कम चारा खाते हैं, जिससे उनकी वृद्धि दर घट जाती है और शरीर में मांस की मात्रा कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त, मांस की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है, जिससे बाजार में उसकी कीमत कम मिलती है। परिणामस्वरूप खरगोश पालकों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

ग्रीष्म तनाव का प्रबंधन

- अंगोरा खरगोशों के लिए आदर्श तापमान 5 से 22 डिग्री सेल्सियस माना जाता है। इसलिए जैसे ही वातावरण का तापमान 22 डिग्री सेल्सियस से अधिक होने लगे, ग्रीष्म तनाव के प्रबंधन हेतु आवश्यक उपाय शुरू कर देने चाहिए। सामान्य प्रबंधन के अंतर्गत निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं:
- गर्मी प्रारंभ होते ही खरगोशों की ऊन की कतराई (शेयरिंग) कर देनी चाहिए, जिससे शरीर से अतिरिक्त गर्मी आसानी से बाहर निकल सके।
- प्रत्येक पिंजरे में केवल एक ही खरगोश रखना चाहिए, ताकि शरीर की गर्मी का प्रभाव कम हो और पर्याप्त स्थान उपलब्ध हो सके।
- यदि खरगोश पालन कॉलोनी आवास पद्धति में किया जा रहा हो, तो प्रत्येक खरगोश के लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध करवाना चाहिए। सामान्यत: 3-4 खरगोश प्रति वर्ग मीटर से अधिक नहीं रखने चाहिए।
- खरगोश आवास की खिड़कियां एवं दरवाजे खुले रखने चाहिए, ताकि वायु संचार बेहतर बना रहे।
- आवास में अतिरिक्त धूप एवं गर्मी के प्रवेश को रोकने के लिए शेड नेट का उपयोग करना चाहिए। साथ ही छत को ठंडा रखने हेतु भीगी हुई जूट की बोरियों का प्रयोग लाभकारी होता है।
- चारा एवं दाना सुबह और शाम के अपेक्षाकृत ठंडे समय में देना चाहिए तथा आहार में ऊर्जा की मात्रा बढ़ानी चाहिए। केले, तरबूज एवं खरबूजे के छिलकों जैसे फलों के अवशेष इलेक्ट्रोलाइट्स, खनिज, विटामिन एवं प्रोबायोटिक्स से भरपूर होते हैं। इन्हें कुल आहार का लगभग 10 प्रतिशत तक खिलाया जा सकता है, जिससे खरगोशों को गर्मी से राहत मिलती है।
- मध्यम तापमान की स्थिति में आवास में निकास पंखे अथवा कूलर का उपयोग करना लाभकारी होता है।
- अधिक तापमान एवं कम आर्द्रता की स्थिति में कूलर का उपयोग विशेष रूप से प्रभावी रहता है।
- खरगोशों के लिए चौबीस घंटे स्वच्छ एवं ठंडे पानी की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए।
- अत्यधिक गर्मी की अवस्था में पिंजरों के पास बर्फ जमी हुई बोतलें रखने से तापमान कम करने में सहायता मिलती है।
- पशु चिकित्सक की सलाह से आहार में आंवला चूर्ण एवं सहजन पत्ती चूर्ण जैसे औषधीय पौधों को शामिल करने से भी ग्रीष्म तनाव कम होता है तथा खरगोशों की उत्पादन क्षमता में सुधार होता है।
- क्षेत्र विशेष की जलवायु के अनुरूप उपयुक्त नस्लों का चयन एवं पालन करना चाहिए।

हालांकि, ग्रीष्म तनाव खरगोशों की उत्पादन क्षमता, प्रजनन एवं स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। उचित आवास प्रबंधन, संतुलित आहार, पर्याप्त ठंडक व्यवस्था तथा क्षेत्र के अनुरूप उपयुक्त नस्लों के चयन द्वारा ग्रीष्म तनाव के नकारात्मक प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। उचित प्रबंधन अपनाकर खरगोश पालन को अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ बनाया जा सकता है। ■

पाचन तंत्र एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता पर प्रभाव

ग्रीष्म तनाव का प्रभाव खरगोशों के पाचन तंत्र पर भी पड़ता है। अधिक गर्मी के कारण आंतों में पाए जाने वाले लाभकारी सूक्ष्मजीवों का संतुलन बिगड़ जाता है तथा रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं की संख्या बढ़ने लगती है। इसके परिणामस्वरूप पाचन संबंधी रोगों की आशंका बढ़ जाती है। इसके अलावा, ग्रीष्म तनाव खरगोशों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी कमजोर कर देता है, जिससे विभिन्न रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है। इससे उपचार एवं रोग प्रबंधन पर अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है, जो खरगोश पालन की लाभप्रदता को प्रभावित करता है।

मादा खरगोश अपने शावकों के साथ

ग्रीष्म तनाव

ग्रीष्म तनाव वह अवस्था है, जब पर्यावरण का तापमान खरगोश की सहन क्षमता से अधिक हो जाता है। खरगोशों के शरीर में पसीने की ग्रंथियां नहीं होतीं, इसलिए वे मनुष्य की तरह पसीना निकालकर शरीर का तापमान नियंत्रित नहीं कर पाते। वे मुख्यत: कानों एवं तेज सांस लेने की प्रक्रिया द्वारा शरीर की अतिरिक्त गर्मी बाहर निकालते हैं। जब तापमान 30 डिग्री सेल्सियस से अधिक तथा आर्द्रता भी ज्यादा हो जाती है (तापमान-आर्द्रता सूचकांक 28 से अधिक), तब खरगोश ग्रीष्म तनाव की स्थिति में आ जाते हैं।

तनाव के लक्षण: ग्रीष्म तनाव की स्थिति में खरगोशों में कई प्रारंभिक लक्षण दिखाई देते हैं, जिनमें तेज सांस लेना (हांफना), कानों का अत्यधिक गर्म होना, सुस्ती एवं कमजोरी, पिंजरे के फर्श पर शरीर फैलाकर लेटना, नाक एवं मुंह के आसपास गीलापन या पानी जैसा स्राव निकलना, चारा-दाना कम खाना अथवा बिल्कुल न खाना तथा बार-बार पानी पीना प्रमुख हैं।

सोयाबीन में फलियां कम बनने की समस्या का समाधान

आराधना कुमारी[1], संतोष कुमार सिंह[2] और **अपर्णा जायसवाल[1]**

" सोयाबीन, खरीफ मौसम की प्रमुख नकदी फसल है। यह फसल कृषि अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अक्सर देखा जाता है कि सोयाबीन के पौधे हरे-भरे होकर फूल तो देते हैं, परंतु फलियों का विकास पर्याप्त नहीं हो पाता, जिससे उत्पादन प्रभावित होता है। इसके प्रमुख कारणों में सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे बोरॉन, मॉलिब्डेनम, पोटाश एवं कैल्शियम की कमी, अत्यधिक नाइट्रोजन के कारण वानस्पतिक वृद्धि, नमी का असंतुलन (सूखा या जलभराव), कीट एवं रोग प्रकोप, अनुचित बुआई समय तथा अनुपयुक्त किस्मों का चयन शामिल हैं। समाधान के रूप में संतुलित पोषण प्रबंधन अपनाना आवश्यक है, जिसमें बोरैक्स, अमोनियम मॉलिब्डेट एवं पोटाश का छिड़काव लाभकारी सिद्ध होता है। साथ ही, वृद्धि नियंत्रकों जैसे-सीसीसी एवं एनएए का उपयोग, संतुलित सिंचाई, समय पर कीट एवं रोग नियंत्रण तथा उपयुक्त किस्मों का चयन उत्पादन बढ़ाने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त, सैलिसिलिक एसिड एवं थायो यूरिया जैसे हार्मोनल घोल तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव भी फलियों के विकास को प्रोत्साहित करता है। उचित एवं वैज्ञानिक प्रबंधन अपनाने से सोयाबीन में फलियों की संख्या बढ़ाई जा सकती है, जिससे उत्पादन एवं किसानों की आय दोनों में वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है। "

[1]कृषि महाविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, गंज बासोदा, जिला-विदिशा (मध्य प्रदेश); [2]मृदा विज्ञान विभाग, डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, जिला-समस्तीपुर (बिहार)

सोयाबीन खरीफ मौसम की प्रमुख तिलहनी फसलों में से एक के रूप में स्थापित हो चुकी है। इसकी बुआई सामान्यत: जून-जुलाई में की जाती है। स्थानीय कृषि प्रणाली में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

वर्तमान समय में किसान परंपरागत विधियों के साथ-साथ वैज्ञानिक तकनीकों को भी अपनाने लगे हैं, जैसे-बीजोपचार, संतुलित उर्वरक उपयोग, रिज एवं फर्रो पद्धति, सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग तथा समय पर निराई-गुड़ाई। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार, यदि इन तकनीकों को सही समय पर और उचित ढंग से अपनाया जाए, तो सोयाबीन की उत्पादकता में लगभग 30 प्रतिशत तक वृद्धि संभव है, जिससे किसानों की आय एवं क्षेत्र की खाद्य सुरक्षा दोनों में सुधार हो सकता है।

आर्थिक दृष्टि से भी सोयाबीन का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह एक प्रमुख नकदी फसल के रूप में किसानों को स्थायी आय प्रदान करती है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाती है। मध्य प्रदेश, देश के कुल सोयाबीन क्षेत्रफल का लगभग 55 प्रतिशत तथा उत्पादन में लगभग 64 प्रतिशत योगदान करता है, जिसके कारण इसे 'सोया स्टेट' के रूप में जाना जाता है।

इसके बावजूद, सोयाबीन की खेती में एक प्रमुख समस्या अक्सर सामने आती है कि पौधे अच्छी वृद्धि और पुष्पण के बावजूद पर्याप्त फलियां नहीं बना पाते। कई बार फूल झड़ जाते हैं या फलियों का विकास सीमित रह जाता है, जिससे उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके प्रमुख कारणों में पोषण असंतुलन, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी, अत्यधिक नाइट्रोजन के कारण अधिक वनस्पतिक वृद्धि, प्रतिकूल मौसम, नमी असंतुलन तथा कीट एवं रोग प्रकोप शामिल हैं।

अत: आवश्यक है कि इस समस्या का वैज्ञानिक विश्लेषण कर प्रभावी प्रबंधन उपाय अपनाए जाएं।

कम फलन के कारण एवं समाधान

अत्यधिक वनस्पतिक वृद्धि का प्रभाव

अत्यधिक नाइट्रोजन या असंतुलित पोषण के कारण पौधों में अत्यधिक पत्तियां एवं शाखाएं विकसित होती हैं, जिससे फूल एवं फलन प्रभावित होते हैं। ऐसी स्थिति में पुष्पण अवस्था पर वृद्धि नियंत्रक सीसीसी (250 पीपीएम) तथा एनएए (20-40 पीपीएम) का छिड़काव करने से फूलों का

झड़ना कम होता है और फलियों की संख्या बढ़ती है।

नमी एवं मौसम की भूमिका

फूल आने और फल बनने की अवस्था अत्यंत संवेदनशील होती है। सूखे की स्थिति में फूल झड़ जाते हैं, जबकि जलभराव जड़ों एवं गांठों की क्रियाशीलता को प्रभावित करता है। अत: इस अवस्था में आवश्यकतानुसार सिंचाई करना तथा खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था बनाए रखना आवश्यक है।

कीट एवं रोग प्रबंधन

फसल में हेलिकोवर्पा एवं स्पोडोप्टेरा जैसे कीट फूलों एवं कोमल भागों को नुकसान पहुंचाते हैं, जबकि जड़गांठ सूत्रकृमि एवं कॉलर रॉट जैसे रोग पौधों को कमजोर कर देते हैं। इससे बचाव के लिए फसल की नियमित निगरानी, समय पर नियंत्रण उपाय तथा बीजोपचार एवं रोगरोधी किस्मों का चयन आवश्यक है।

बुआई समय एवं किस्म चयन

यदि बुआई समय पर नहीं की जाती, तो पुष्पण अवस्था प्रतिकूल मौसम में आ जाती है, जिससे फूल टिक नहीं पाते। इस प्रकार क्षेत्र के अनुसार अनुशंसित किस्मों का चयन, समय पर बुआई तथा उचित पौध संख्या बनाए रखना आवश्यक है।

हार्मोनल एवं तनाव प्रबंधन

गर्मी, सूखा या पोषण असंतुलन जैसे तनाव का सीधा प्रभाव फूल एवं फलन पर पड़ता है। इस स्थिति में सलिसिलिक एसिड (50 पीपीएम) या थायो यूरिया (500 पीपीएम) का छिड़काव पौधों की तनाव सहन क्षमता बढ़ाता है। साथ ही एनएए (20-40 पीपीएम) एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों (जिंक, लौह, मैंग्नीज और बोरॉन) के 0.5 प्रतिशत घोल का छिड़काव फलियों की संख्या बढ़ाने में सहायक होता है।

संतुलित पोषण, उचित प्रबंधन एवं वैज्ञानिक उपायों के समन्वय से सोयाबीन में फलियों की संख्या बढ़ाई जा सकती है, जिससे उत्पादन एवं किसानों की आय दोनों में वृद्धि संभव है।

सोयाबीन में फलियां न लगना एक सामान्य किन्तु अत्यंत गंभीर समस्या है, जो सीधे उत्पादन एवं किसानों की आय को प्रभावित करती है। इसके पीछे पोषण असंतुलन, अत्यधिक नाइट्रोजन के कारण पर्णीय वृद्धि, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी, नमी असंतुलन, कीट एवं रोग प्रकोप, अनुचित बुआई समय तथा प्रतिकूल मौसम जैसे कई कारण जिम्मेदार होते हैं।

यदि किसान इन सभी पहलुओं पर समय रहते ध्यान दें और संतुलित पोषण प्रबंधन अपनाएं, जिसमें बोरॉन, मॉलिब्डेनम, पोटाश एवं कैल्शियम जैसे पोषक तत्वों का उचित उपयोग शामिल हो, तो फूलों से फलियों में परिवर्तन की दर में सुधार किया जा सकता है। इसके साथ ही वृद्धि नियंत्रकों जैसे सीसीसी एवं एनएए का छिड़काव, समय पर सिंचाई एवं जल निकास की व्यवस्था, रोग-प्रतिरोधी किस्मों का चयन, बीजोपचार तथा कीट-रोग प्रबंधन जैसी वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाकर पौधों की कार्यक्षमता बढ़ाई जा सकती है।

इसके अतिरिक्त, हार्मोनल उपचार एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों के घोल का छिड़काव पौधों की तनाव सहन क्षमता को बढ़ाता है, जिससे वे प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बेहतर फलन कर पाते हैं।

इस प्रकार, वैज्ञानिक अनुशंसाओं पर आधारित समेकित प्रबंधन अपनाकर न केवल फलियों की संख्या बढ़ाई जा सकती है, बल्कि उत्पादन एवं लाभ दोनों में स्थिर वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है। इससे किसानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी तथा विदिशा जैसे प्रमुख सोयाबीन उत्पादक क्षेत्रों की पहचान और अधिक सशक्त बनेगी। ■

सोयाबीन फसल में पुष्प झड़ना

पोषण असंतुलन का प्रभाव

सोयाबीन में फलियों का निर्माण पौधे के संतुलित पोषण पर निर्भर करता है। जब बोरॉन एवं मॉलिब्डेनम जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती है, तो परागण एवं पराग नलिका की वृद्धि प्रभावित हो जाती है, जिससे फूल आने के बावजूद फलियां नहीं बन पातीं। इसी प्रकार पोटाश एवं कैल्शियम की कमी से फूलों का झड़ना बढ़ जाता है। इस स्थिति में पुष्पण अवस्था पर बोरैक्स (0.2 प्रतिशत) या अमोनियम मॉलिब्डेट (0.1 प्रतिशत) तथा पोटाश (KNO_3 1-2 प्रतिशत) का छिड़काव लाभकारी होता है। साथ ही बुआई के समय संतुलित मात्रा में डीएपी या सिंगल सुपर फॉस्फेट का प्रयोग जड़ों एवं गांठों के बेहतर विकास में सहायक होता है।

सूचना

ग्राहकों से निवेदन है कि वे *'खेती'* पत्रिका हेतु अपना चंदा समय से पूर्व भेजने की व्यवस्था करें, ताकि पत्रिका समय पर और लगातार मिलती रहे। यदि आपका पता बदल गया है तो उसकी तुरंत सूचना दें। इसके लिए अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।

व्यवसाय प्रभारी
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा,
नई दिल्ली-110012

आधुनिक विधि से धान की सीधी बुआई

देवेश कुमार[1] और **राजेश चन्द्र वर्मा[2]**

धान की सीधी बुआई (डीएसआर) धान उत्पादन की एक आधुनिक एवं संसाधन संरक्षण तकनीक है, जिसमें पारंपरिक नर्सरी एवं रोपाई विधि के स्थान पर बीजों की सीधी बुआई खेत में की जाती है। इस पद्धति में डीएसआर सीडड्रिल, मल्टीक्रॉप सीडर, लकी सीड ड्रिल, जीरो टिलेज, सुपर सीडर अथवा हैप्पी सीडर जैसे यंत्रों का उपयोग किया जाता है। बुआई के समय बीज को 2-3 सें.मी. गहराई पर बोना चाहिए। मशीन द्वारा बुआई में पंक्ति से पंक्ति की दूरी लगभग 18-22 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 5-10 सें.मी. रखना उपयुक्त माना जाता है। सामान्यत: वर्षा से पूर्व खेत तैयार कर सूखी अवस्था में बुआई की जाती है। अधिक उत्पादन के लिए जून के प्रथम सप्ताह में ट्रैक्टरचालित यंत्रों से बुआई करना लाभकारी होता है।

पारंपरिक रोपाई विधि में धान की खेती के लिए अत्यधिक पानी एवं श्रम की आवश्यकता होती है। अनुमानत: 1 कि.ग्रा. धान उत्पादन के लिए लगभग 4000-5000 लीटर पानी की खपत होती है। वर्तमान समय में जल संसाधनों पर बढ़ते दबाव को देखते हुए धान की सीधी बुआई एक उपयोगी विकल्प के रूप में उभर रही है।

इस विधि में नर्सरी तैयार करने, पौध उखाड़ने तथा श्रमिकों द्वारा रोपाई कराने की आवश्यकता नहीं होती, जिससे श्रम एवं लागत दोनों में कमी आती है। साथ ही समय पर बुआई एवं उचित नमी प्रबंधन से बेहतर अंकुरण एवं फसल स्थापना सुनिश्चित होती है।

प्रमुख विधियां

सूखी सीधी बुआई

इस विधि में खेत सूखी अवस्था में रहता है और डीएसआर सीडड्रिल, मल्टीक्रॉप सीडर, लकी सीडड्रिल, जीरो टिलेज या सुपर सीडर से बुआई की जाती है। बुआई के बाद सिंचाई की जाती है।

गीली सीधी बुआई

इस विधि में खेत जुताई अवस्था में रहता है तथा अंकुरित बीजों को ड्रम सीडर की सहायता से बोया जाता है।

[1]कृषि अभियांत्रिकी; [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केंद्र, संत कबीर नगर, डाक: छपरा मगर्वी, जिला-संत कबीर नगर-272162 (उत्तर प्रदेश)

लाभ

धान की सीधी बुआई तकनीक पानी, श्रम एवं लागत की बचत करने वाली आधुनिक पद्धति है। पारंपरिक रोपाई विधि की तुलना में इसमें लगभग 20-25 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है, क्योंकि खेत में लगातार पानी बनाए रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस तकनीक में नर्सरी तैयार करने एवं रोपाई की आवश्यकता नहीं होने से प्रति हैक्टर लगभग 25-30 श्रमिकों की बचत होती है। साथ ही नर्सरी, मल्चिंग एवं रोपाई पर होने वाला खर्च कम होने से कुल उत्पादन लागत घटती है। मशीनों के उपयोग से प्रति हैक्टर लगभग 35-40 लीटर डीजल की बचत भी संभव होती है। सीधी बुआई का धान सामान्य रोपित धान की तुलना में लगभग 10-15 दिनों पहले तैयार हो जाता है, जिससे रबी फसलों की समय पर बुआई की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, मृदा की भौतिक संरचना सुरक्षित रहती है तथा उर्वरकों के उपयोग की दक्षता भी बढ़ती है।

सीधी बुआई विधि में खेत की अच्छी तैयारी एवं पर्याप्त नमी अत्यंत आवश्यक है। सामान्यत: वर्षा से पूर्व खेत तैयार कर सूखी अवस्था में बुआई की जाती है। जून के प्रथम सप्ताह में बैलचालित अथवा ट्रैक्टरचालित बुआई यंत्रों द्वारा समय पर बुआई करना अधिक लाभकारी माना जाता है।

मुख्य विशेषताएं

धान की सीधी बुआई तकनीक में नर्सरी तैयार करने एवं रोपाई की आवश्यकता नहीं होती, जिससे श्रम एवं समय दोनों की बचत होती है। इस पद्धति से लगभग 15-25 प्रतिशत तक पानी की बचत संभव होती है तथा समय पर बुआई करना आसान हो जाता है। इसके अतिरिक्त, कृषि यंत्रों का उपयोग सरल, प्रभावी एवं अधिक कार्य कुशल होता है।

इस तकनीक को अपनाने से मजदूरी लागत में कमी आती है तथा जुताई एवं रोपाई पर होने वाला खर्च भी घटता है। सीधी बुआई की फसल अपेक्षाकृत जल्दी तैयार हो जाती है, जिससे अगली फसल की समय पर बुआई संभव होती है। साथ ही बड़े क्षेत्र में कम समय में आसानी से बुआई की जा सकती है तथा डीजल एवं ऊर्जा की भी बचत होती है।

अंकुरित बीज द्वारा ड्रम सीडर विधि

इस विधि में खेत को हल्का समतल करने के बाद अंकुरित बीजों की बुआई ड्रम सीडर की सहायता से की जाती है। यह तकनीक श्रम, समय एवं पानी की बचत के साथ पौधों की समान दूरी बनाए रखने में सहायक होती है। बुआई से पूर्व खेत को यथासंभव समतल कर लेना चाहिए तथा बीजों को 2-3 सें.मी. गहराई पर बोना उपयुक्त रहता है। सामान्यत: पंक्ति से पंक्ति की दूरी 18-22 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 5-10 सें.मी. रखी जाती है।

मुख्य बिंदु

- बुआई का उपयुक्त समय जून का पहला पखवाड़ा माना जाता है।
- बीज दर लगभग 8-10 कि.ग्रा. प्रति एकड़ रखें। बुआई से पूर्व बीजों को 24 घंटे भिगोकर छाया में सुखाना लाभकारी होता है।
- खरपतवार प्रबंधन इस तकनीक का सबसे महत्वपूर्ण चरण है। बुआई के तुरंत बाद पेण्डिमेथिलीन जैसे प्री-इमर्जेंस शाकनाशी का प्रयोग तथा 20-25 दिनों बाद अनुशंसित शाकनाशी का छिड़काव करना चाहिए।
- पहली सिंचाई बुआई के तुरंत बाद तथा दूसरी सिंचाई 15-21 दिनों बाद करें, ताकि अंकुरण एवं पौध वृद्धि अच्छी हो सके।

धान की स्वस्थ बढ़वार

बीज शोधन एवं अंकुरण की प्रक्रिया

उत्तम अंकुरण एवं स्वस्थ पौध स्थापना के लिए बीज शोधन आवश्यक है। बीज चयन हेतु 10 लीटर पानी में 1.5-2 कि.ग्रा. नमक घोलकर बीज डालें। ऊपर तैरने वाले हल्के एवं अनुपयुक्त बीजों को हटा दें तथा नीचे बैठे स्वस्थ बीजों को साफ पानी से 2-3 बार धोकर साफ कर लें। फफूंदजनित रोगों से बचाव के लिए कार्बेण्डाजिम 50 प्रतिशत डब्ल्यूपी/2 ग्राम या थीरम 2-3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करना चाहिए। जैविक विकल्प के रूप में ट्राइकोडर्मा 5-10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज का उपयोग भी लाभकारी रहता है। डीएसआर एवं ड्रम सीडर विधि के लिए बीजों को 8-10 घंटे पानी में भिगोकर 24 घंटे तक ढककर रखना चाहिए, जिससे बीज अंकुरित होकर बुआई के लिए तैयार हो जाते हैं। उपचारित बीजों को सीधे धूप में नहीं सुखाना चाहिए तथा उपचार के तुरंत बाद बुआई करना उचित रहता है।

उर्वरक प्रबंधन

सीधी बुआई वाले धान में संतुलित उर्वरक प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। मृदा परीक्षण के आधार पर प्रति हैक्टर लगभग 120-140 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 30 कि.ग्रा. पोटाश का प्रयोग करना चाहिए।

नाइट्रोजन की एक-तिहाई मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय दें। शेष नाइट्रोजन को दो बराबर भागों में विभाजित कर कल्ले फूटने एवं बाली निकलने की अवस्था में प्रयोग करें। धान-गेहूं फसलचक्र में बुआई के समय 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर जिंक सल्फेट का प्रयोग भी लाभकारी पाया गया है।

धान की सीधी बुआई एक आधुनिक, कम लागत एवं श्रम-बचत तकनीक है, जो विशेष रूप से उन क्षेत्रों के लिए उपयोगी है, जहां पानी एवं श्रमिकों की कमी है। वर्तमान परिस्थितियों में यह तकनीक किसानों के लिए संसाधन संरक्षण, लागत में कमी एवं बेहतर उत्पादन का प्रभावी विकल्प बनकर उभर रही है।

धान की सीधी बुआई हेतु सुपर सीडर

मक्का फसल में नाशीजीव प्रबंधन

मुकेश कुमार खोखर, अनूप कुमार,
राज किरण, लिकोन आचार्य और **मनोज चौधरी**

“ मक्का, विश्व की प्रमुख खाद्यान्न फसलों में से एक है और धान तथा गेहूं के बाद इसका तीसरा स्थान है। भारत में इसकी खेती मुख्यत: खरीफ मौसम में की जाती है, जबकि दक्षिणी एवं पूर्वी क्षेत्रों में यह वर्षभर विभिन्न मौसमों में उगाई जाती है। यह फसल खाद्य, चारा एवं औद्योगिक उपयोग के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। हालांकि, कीट एवं रोगों का प्रकोप इसकी उत्पादकता को प्रभावित करता है। इससे बचाव हेतु उन्नत एवं रोगरोधी किस्मों का चयन, बीजोपचार, समय पर बुआई, संतुलित पोषण प्रबंधन, फसल अवशेष प्रबंधन तथा समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन अपनाना आवश्यक है, जिससे उत्पादन में स्थिरता लाई जा सकती है। ”

भारत में मक्का की फसल पर 130 से अधिक प्रकार के नाशीजीवों का प्रकोप पाया जाता है, किन्तु इनमें से लगभग एक दर्जन ही आर्थिक रूप से गंभीर क्षति पहुंचाते हैं। ये कीट एवं रोग फसल की विभिन्न अवस्थाओं पर आक्रमण कर उत्पादन को प्रभावित करते हैं। मक्का के प्रमुख नाशीजीव कीट एवं रोग इस प्रकार हैं:

प्रमुख कीट

फॉल आर्मी वर्म

यह मक्का का एक अत्यंत आक्रामक एवं हानिकारक कीट है, जो विशेष रूप से फसल की प्रारंभिक अवस्था (लगभग 20 दिनों तक) में अधिक नुकसान पहुंचाता है। इसके नवजात लार्वा पत्तियों की ऊपरी सतह से क्लोरोफिल को खुरचकर खाते हैं, जिससे पत्तियों पर चांदी जैसी पारदर्शी परत दिखाई देती है, जो आगे चलकर सफेद लंबी धारियों या पैच में बदल जाती है।

बाद की अवस्थाओं (इंस्टार) में लार्वा पत्तियों में ‘विंडोपेन’ जैसे छेद बनाते हैं। परिपक्व लार्वा की पहचान सिर पर सफेद उल्टे ‘Y’ आकार के निशान तथा आठवें उदर खंड पर वर्गाकार रूप में चार काले धब्बों से की जा सकती है। यह कीट प्राय: पौधों के गोभ में छिपकर पत्तियों को खाते हुए पाया जाता है, जिससे पौधों की वृद्धि गंभीर रूप से प्रभावित होती है।

गुलाबी तनाबेधक (सेसमिया इन्फेरेंस)

यह कीट प्रायद्वीपीय क्षेत्रों में मक्का की फसल को पत्ती, तना, टेसल एवं भुट्टे सभी भागों पर नुकसान पहुंचाता है। इसके लार्वा प्रारंभ में पत्ती आवरण के नीचे भक्षण करते हैं और बाद में केंद्रीय अंकुर में प्रवेश कर जाते हैं। इसके कारण केंद्रीय पत्ती सूख जाती है, जिसे ‘डेड हार्ट’ की स्थिति कहा जाता है, जो तनाबेधक के प्रकोप के समान लक्षण दर्शाती है। इस कीट के प्रकोप से पौधे की वृद्धि रुक जाती है तथा उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

प्ररोह मक्खी

यह कीट मक्का की प्रारंभिक अवस्था में विशेष रूप से नुकसान पहुंचाता है। वयस्क मक्खी निचली पत्तियों, डंठल की सतह, अंकुरों के आसपास की मृदा अथवा दरारों में

पत्ती अंगमारी

यह रोग बाइपोलरिस मेडिस नामक कवक के कारण होता है। इसके लक्षण रोगजनक की विभिन्न रेस तथा किस्मों की आनुवंशिक पृष्ठभूमि के अनुसार भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। रेस ‘O’ के प्रकोप में प्रारंभ में पत्तियों पर छोटे, हीरे के आकार के धब्बे बनते हैं, जिनकी लंबाई लगभग 2.6 से 3.2 मि.मी. तक होती है। विभिन्न किस्मों में इन धब्बों का आकार एवं स्वरूप अलग-अलग हो सकता है। वहीं रेस ‘T’ के कारण पत्तियों पर अण्डाकार, हरे-पीले रंग के छोटे धब्बे (लगभग 0.6-2.7 मि.मी.) दिखाई देते हैं, जो बाद में काले या लाल-भूरे रंग के हो जाते हैं। अधिक प्रकोप की स्थिति में पत्तियों का हरा भाग नष्ट होने लगता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है और अंतत: फसल की वृद्धि एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अंगमारी रोग का प्रकोप

भाकृअनुप-राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110068; भाकृअनुप-राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली-110012

कीट द्वारा ग्रसित पत्तियां

अंडे देती है। अंडों से निकलने वाले मैगॉट पत्ती अवस्था से लेकर बुआई के लगभग 25 दिनों तक पौधों को क्षति पहुंचाते हैं।

नवजात मैगॉट पहले पत्ती की सतह पर रेंगते हैं, फिर गोभ में प्रवेश कर पौधे के कोमल ऊतकों को खाते हुए नीचे की ओर बढ़ते हैं। इसके परिणामस्वरूप केंद्रीय अक्ष भूरे रंग का हो जाता है और अंततः 'मृतगोभ' (डेड हार्ट) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिससे पौधे की वृद्धि रुक जाती है और उपज प्रभावित होती है।

प्रमुख रोग

टर्सीकम पत्ती अंगमारी

यह रोग एक्सीरोहाइलम टर्सीकम नामक कवक के कारण होता है और मक्का की फसल में व्यापक क्षति पहुंचाता है। रोग की शुरुआत सामान्यतः निचली पत्तियों से होती है, जहां लम्बे, अण्डाकार, धूसर-हरे रंग के 2.5 से 15 सें.मी. तक के धब्बे बनते हैं, जो आंख के आकार के दिखाई देते हैं। समय के साथ ये धब्बे ऊपर की पत्तियों तक फैल जाते हैं।

पुष्पण के बाद अनुकूल परिस्थितियों में यह रोग तेजी से बढ़ता है, जिससे पत्तियां सूखने लगती हैं। गंभीर स्थिति में पूरा पौधा प्रभावित होकर सूख सकता है, परिणामस्वरूप उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पत्ती मोड़क एवं शीथ ब्लाइट

यह रोग राइजोक्टोनिया सोलेनाई नामक

रोग से ग्रसित पौधा

कवक के कारण होता है और मक्का की फसल में पत्तियों एवं पत्ती आवरण (शीथ) को प्रभावित करता है। प्रारंभ में पत्तियों एवं शीथ पर हल्के भूरे, धूसर या फीके रंग के धब्बे घेरों के रूप में दिखाई देते हैं, जो धीरे-धीरे फैलकर बड़े धब्बों में परिवर्तित हो जाते हैं।

रोग के प्रकोप की अवस्था में भुट्टों के पास हल्के भूरे या काले रंग के छोटे-छोटे सरसों के दाने के समान स्क्लेरोटिया दिखाई देते हैं। अधिक संक्रमण होने पर भुट्टे समय से पहले सूखने लगते हैं, जिससे दानों का विकास प्रभावित होता है और उपज में कमी आती है।

सामान्य रतुआ रोग

यह रोग पक्सीनिया सोरघाई नामक कवक के कारण होता है और रबी मक्का में अधिक नुकसान पहुंचाता है। इसके लक्षण पत्तियों की दोनों सतहों पर छोटे, गोल या लगभग 0.2 मि.मी. आकार के उभरे हुए पस्ट्यूल (फफोले) के रूप में दिखाई देते हैं। इन पस्ट्यूल के साथ पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के यूरिडिनिया भी विकसित होते हैं, जिससे पत्तियां जंग लगी हुई प्रतीत होती हैं।

प्रारंभ में इन पस्ट्यूल से लाल-भूरे रंग का चूर्ण निकलता है, जो पौधे की परिपक्वता

तना बेधक

प्रभावित पत्ती

यह कीट मक्का की खरीफ फसल में विशेष रूप से अधिक प्रकोप करता है और प्रारंभिक अवस्था में सर्वाधिक नुकसान पहुंचाता है। अंडों से निकलने के बाद इसके लार्वा प्रारंभ में पत्तियों को खाते हैं, जिससे उन पर छोटे-छोटे अनियमित छेद दिखाई देते हैं। बाद में ये लार्वा तने में प्रवेश कर अंदर सुरंग बनाते हैं, जिससे पौधे की वृद्धि रुक जाती है और कई बार 'डेड हार्ट' की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसके कारण पौधे कमजोर हो जाते हैं तथा उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

फॉल आर्मीवर्म कीट द्वारा भक्षण

के साथ काले रंग में परिवर्तित हो जाता है। अधिक प्रकोप की स्थिति में पत्तियों की प्रकाश संश्लेषण क्षमता प्रभावित होती है, जिससे पौधे की वृद्धि एवं उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

मृदु रोमिल आसिता

यह रोग पर्नोस्क्लेरोस्पोरा हेटेरोपोगोनी नामक रोगजनक के कारण होता है। इसके लक्षण सामान्यतः बुआई के 15-20 दिनों के भीतर दिखाई देने लगते हैं। प्रभावित पौधे हल्के पीले दिखाई देते हैं, जिनमें नीचे की 2-3 पत्तियां अपेक्षाकृत स्वस्थ रहती हैं, जबकि ऊपर की पत्तियों पर हल्के हरे से पीले रंग की लंबवत धारियां विकसित हो जाती हैं।

समय के साथ ऊपर की सभी पत्तियां पूर्णतः रोगग्रस्त हो जाती हैं। ऐसे पौधे छोटे, कमजोर एवं अविकसित रह जाते हैं, जिन्हें दूर से ही आसानी से पहचाना जा सकता है। अधिक प्रकोप की स्थिति में रोगग्रस्त पौधे 40-50 दिनों की अवस्था में सूखकर नष्ट हो जाते हैं, जिससे फसल की उत्पादकता पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।

भूरा धब्बा

यह रोग फाइसोडरमा मेडिस नामक रोगजनक के कारण होता है और विशेष रूप से उपोष्ण तथा अधिक वर्षा एवं उच्च तापमान वाले क्षेत्रों में गंभीर समस्या बन जाती है। इसके लक्षण प्रारंभ में पत्तियों पर हल्के पीले रंग के छोटे-छोटे क्लोरोफिल रहित धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं, जो स्वस्थ एवं रोगग्रस्त ऊतकों के बीच वैकल्पिक पट्टियों (बैंड) के रूप में व्यवस्थित होते हैं।

समय के साथ पत्ती के मध्य भाग में ये धब्बे गोलाकार एवं गहरे चॉकलेटी-भूरे रंग के हो जाते हैं। अधिक प्रकोप की स्थिति में पत्तियों की कार्यक्षमता प्रभावित होती है, जिससे पौधे की वृद्धि एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

फ्यूजेरियम तना गलन

यह रोग फ्यूजेरियम मोनिलिफोर्मी नामक कवक के कारण होता है। इसके लक्षण सामान्यतः पुष्पण के बाद प्रकट होते हैं

तना गलन

यह रोगपिथियम एफेडिरमेटन नामक रोगजनक के कारण होता है और सामान्यत: पुष्पण से पूर्व दिखाई देता है। सड़न प्राय: मृदा की सतह के ठीक ऊपर स्थित एकल अंत:ग्रंथि को प्रभावित करती है। प्रभावित भाग जलसिक्त (पानी से भीगा) एवं नरम हो जाता है। अधिक नमी या जलभराव की स्थिति में तना कमजोर होकर गलने लगता है, जिससे पौधा आसानी से गिर या टूट जाता है। परिणामस्वरूप पौधे की वृद्धि रुक जाती है तथा फसल उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

और फसल के पकने की अवस्था में अधिक स्पष्ट दिखाई देते हैं। रोगजनक प्राय: जड़ क्षेत्र एवं निचली अंत:ग्रंथियों को प्रभावित करता है, जिससे तना कमजोर हो जाता है। प्रभावित पौधों को चीरकर देखने पर अंदर का भाग गुलाबी, जामुनी या बेरंग दिखाई देता है। अधिक प्रकोप की स्थिति में पौधे सूखने लगते हैं तथा तना कमजोर होकर गिर सकता है, जिससे उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

पत्ती मोड़क रोग का प्रकोप

समेकित प्रबंधन

- मक्का में कीट एवं रोगों के प्रभावी नियंत्रण के लिए समेकित प्रबंधन उपाय अपनाना आवश्यक है। इसके अंतर्गत गर्मी के मौसम में 10-15 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार गहरी जुताई करने से खेत में मौजूद फसल अवशेष एवं खरपतवार नष्ट हो जाते हैं, जिससे नाशीजीवों का प्रकोप कम होता है। खेती के लिए अच्छी जल निकासी वाले खेत का चयन करना चाहिए, ताकि जलभराव की स्थिति न बने और रोगों का प्रसार नियंत्रित रहे।
- हमेशा प्रमाणित एवं गुणवत्तायुक्त बीजों का ही उपयोग करना चाहिए। मक्का की कटाई के बाद खेत में बचे डंठलों एवं अवशेषों को हटा देना या डिकम्पोजर की सहायता से नष्ट करना आवश्यक है, जिससे रोगजनक अगली फसल को प्रभावित न कर सकें। गैर-मेजबान फसलों के साथ फसलचक्र अपनाने से भी कीट एवं रोगों का चक्र टूटता है।
- बीजोपचार के रूप में ट्राइकोडर्मा का 10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपयोग करना लाभकारी होता है। बुआई के समय ट्राइकोडर्मा हर्जिनियम को गोबर की खाद के साथ मिलाकर डालने से मृदाजनित रोगों, विशेषकर चारकोल रॉट, पर नियंत्रण पाया जा सकता है। खेत में अत्यधिक पौध घनत्व से बचना चाहिए, क्योंकि

रोग के संक्रमण से प्रभावित पजच

मृदु रोमिल आसिता रोग का संक्रमण

घने पौधे रोगों के प्रसार को बढ़ावा देते हैं। साथ ही नाइट्रोजन उर्वरकों का संतुलित उपयोग करना चाहिए, क्योंकि अधिक नाइट्रोजन रोग विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाता है।

- फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन तथा संक्रमित अवशेषों का नष्ट करना आवश्यक है। पुष्पण से दाना भरने की अवस्था तक फसल में उचित नमी बनाए रखना भी आवश्यक है। नाशीजीवों की साप्ताहिक निगरानी करते रहना चाहिए, ताकि प्रारंभिक अवस्था में ही नियंत्रण उपाय अपनाए जा सकें।
- फॉल आर्मीवर्म के नियंत्रण हेतु प्रति हैक्टर 10 फेरोमोन ट्रैप लगाना तथा 21-25 दिनों के बाद ल्योर बदलना चाहिए। जैविक नियंत्रण के अंतर्गत ट्राइकोग्रामा प्रीटियोसम का 40,000-50,000 अंडे प्रति हैक्टर की दर से उपयोग प्रभावी रहता है। अंकुरण के एक सप्ताह बाद नीम आधारित कीटनाशी (एजाडिरेक्टिन 1500 पीपीएम) 5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना लाभकारी होता है।
- आवश्यकता पड़ने पर ही रासायनिक नियंत्रण उपाय अपनाने चाहिए और इसके लिए कृषि विशेषज्ञ की सलाह अवश्य लेनी चाहिए। इस प्रकार समेकित प्रबंधन अपनाकर मक्का की फसल को कीट एवं रोगों से सुरक्षित रखते हुए उत्पादन एवं गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है।

इस प्रकार समेकित प्रबंधन उपायों को अपनाकर मक्का की फसल को कीट एवं रोगों से सुरक्षित रखा जा सकता है तथा उत्पादन में स्थिर वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। ■

कपास मूल्य शृंखला में उपयोगी बेलिंग तकनीक

मनोज कुमार महावर, रोहित घोसरे, शेषराव काऊतकर, ज्योती ढाकणेलाड और **वर्षा साटनकर**

“ भारत में कपास मूल्य शृंखला फसल उपरांत प्रबंधन की अनेक चुनौतियों से प्रभावित होती है, जिनमें संदूषण, भंडारण की समस्याएं तथा परिवहन अक्षमता प्रमुख हैं। ढीली कपास की बार-बार हैंडलिंग के कारण उसकी गुणवत्ता प्रभावित होती है, जिससे किसानों एवं उद्योग दोनों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। इन समस्याओं के समाधान के रूप में खेत स्तरीय कपास बेलिंग तकनीक एक प्रभावी विकल्प के रूप में उभर रही है। इस तकनीक के माध्यम से कपास को सघन गांठों में परिवर्तित किया जाता है, जिससे भंडारण एवं परिवहन अधिक व्यवस्थित और दक्ष बनता है। साथ ही, कपास में संदूषण की आशंका कम होती है तथा श्रम एवं समय की बचत भी होती है। इस तकनीक को अपनाने से किसानों को बेहतर गुणवत्ता वाली कपास के लिए उच्च मूल्य प्राप्त होने की संभावना बढ़ती है, जिससे उनकी आय में सुधार हो सकता है। परिणामस्वरूप, खेत स्तरीय कपास बेलिंग तकनीक संपूर्ण कपास मूल्य शृंखला को अधिक संगठित, कुशल एवं लाभकारी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। ”

कपास, विश्व की प्रमुख रेशा उत्पादक फसलों में विशेष स्थान रखती है। भारत, विश्व का दूसरा सबसे बड़ा कपास उत्पादक देश है और वैश्विक वस्त्र उद्योग में महत्वपूर्ण योगदान देता है। देश के करोड़ों लघु एवं सीमांत किसान अपनी आजीविका के लिए कपास खेती पर निर्भर हैं, वहीं यह फसल ओटाई, कताई, वस्त्र निर्माण एवं परिधान उद्योग जैसे अनेक क्षेत्रों को भी आधार प्रदान करती है।

वर्ष 2025-26 में भारत में कपास का कुल उत्पादन लगभग 305-317 लाख गांठें (प्रत्येक गांठ 170 कि.ग्रा.) अनुमानित है। देश में गुजरात एवं महाराष्ट्र प्रमुख उत्पादक राज्य हैं, जो संयुक्त रूप से कुल उत्पादन में आधे से अधिक योगदान देते हैं।

गुजरात में औसतन 4.5-4.75 क्विंटल प्रति एकड़ तथा महाराष्ट्र में लगभग 3.5-4.5 क्विंटल प्रति एकड़ उत्पादन प्राप्त होता है। इन राज्यों की उत्पादकता में अंतर का प्रमुख कारण जलवायु परिवर्तन एवं कृषि पद्धतियों में भिन्नता है। हालांकि भारत विश्व के अग्रणी कपास उत्पादक देशों में शामिल है, फिर भी कपास की

भाकृअनुप-केंद्रीय कपास प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, मुंबई (महाराष्ट्र)

लाभकारी

बेलिंग तकनीक अपनाने से कपास की गुणवत्ता में सुधार होने के साथ-साथ किसानों को महत्वपूर्ण आर्थिक लाभ भी प्राप्त हो सकते हैं। यह तकनीक कपास के रखरखाव, भंडारण एवं परिवहन को अधिक व्यवस्थित एवं कुशल बनाती है तथा संपूर्ण आपूर्ति शृंखला में होने वाली हानि को कम करने में सहायक सिद्ध होती है। बेलिंग तकनीक के उपयोग से कपास के रखरखाव, भंडारण एवं परिवहन में श्रम की आवश्यकता लगभग 30-40 प्रतिशत तक कम की जा सकती है। इसके साथ ही, कुल संचालन समय में लगभग 25-35 प्रतिशत तक बचत होने की आशंका रहती है। संदूषण मुक्त एवं बेहतर गुणवत्ता वाली कपास को बाजार में अधिक मूल्य प्राप्त होने की संभावना होती है। अनुमानत: ऐसी कपास के लिए प्रति नग लगभग 500-1500 रुपये तक का उच्च मूल्य मिल सकता है, जिससे किसानों की आय में प्रत्यक्ष वृद्धि संभव है। इसी दिशा में भाकृअनुप-केंद्रीय कपास प्रौद्योगिकी अनुसंधान संस्थान, में भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप कपास को सघन करने हेतु एक उपयुक्त बेलिंग मशीन विकसित की जा रही है। यह पहल कपास के भंडारण, परिवहन एवं गुणवत्ता प्रबंधन को अधिक प्रभावी बनाने के साथ किसानों की आय वृद्धि एवं कपास मूल्य शृंखला के सुदृढ़ीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कदम मानी जा रही है।

गुणवत्ता में संदूषण (कंटामिनेशन) एक बड़ी चुनौती बनी हुई है।

कपास मूल्य शृंखला में फसल उपरांत प्रबंधन सबसे कमजोर कड़ी माना जाता है, विशेषकर भंडारण, रखरखाव एवं परिवहन के स्तर पर। ढीली कपास की बार-बार हैंडलिंग से रेशे की गुणवत्ता प्रभावित होती है, जिससे किसानों एवं उद्योग दोनों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

अत: कपास के भंडारण, परिवहन एवं गुणवत्ता प्रबंधन में सुधार करना अत्यंत आवश्यक है। इससे न केवल कपास रेशे की गुणवत्ता बेहतर होगी, बल्कि किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होगा तथा वैश्विक कपास व्यापार में भारत की प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति भी मजबूत हो सकेगी।

कपास में अपशिष्ट

भारत में कपास उत्पादन से जुड़ी सबसे गंभीर समस्याओं में से एक कपास में अधिक अपशिष्ट अथवा कंटामिनेशन की समस्या है। चुनाई के बाद कपास अक्सर धूल, मृदा, पौधों के अवशेष, प्लास्टिक, जूट रेशों तथा यहां तक कि मानव बाल जैसे बाहरी उत्पादों के संपर्क में आ जाती है। ये अशुद्धियां कपास की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं, कताई दक्षता को कम करती हैं तथा बाजार मूल्य में गिरावट का कारण बनती हैं।

अंतर्राष्ट्रीय वस्त्र निर्माता महासंघ द्वारा प्रतिवर्ष किए जाने वाले वैश्विक सर्वेक्षण के अनुसार, वर्ष 2016 में जहां लगभग 25 प्रतिशत भारतीय कपास को मध्यम या गंभीर रूप से प्रदूषित माना गया था, वहीं वर्ष 2022 में यह घटकर लगभग 22 प्रतिशत रह गया। यह सुधार सकारात्मक संकेत अवश्य है, लेकिन भारतीय कपास में कंटामिनेशन की दर अभी भी अंतर्राष्ट्रीय मानकों की तुलना में अधिक है। इस समस्या का मुख्य कारण

कपास में पाए जाने वाले प्रमुख संदूषक

भारत में कपास परिदृश्य

भारत में कपास उत्पादन की परिस्थितियां विकसित देशों से काफी भिन्न हैं। देश में अधिकांश किसान छोटे एवं बिखरे हुए भूखंडों पर खेती करते हैं। भारत में कपास की औसत भूमि जोत लगभग 1.5 हैक्टर है तथा 70 प्रतिशत से भी अधिक कपास उत्पादक किसान छोटे एवं सीमांत वर्ग में आते हैं, जिनके पास 2 हैक्टर से भी कम भूमि होती है। इसके अतिरिक्त, भारत में अंतरफसल प्रणाली व्यापक रूप से प्रचलित है तथा कपास के पौधे एकसमान रूप से परिपक्व नहीं होते। इसी कारण कपास की चुनाई प्राय: 3-4 चरणों में हाथ से करनी पड़ती है। ऐसी परिस्थितियों में एकल यंत्रीकृत कटाई प्रणाली व्यावहारिक एवं आर्थिक रूप से उपयुक्त नहीं मानी जाती। प्रत्येक चुनाई से प्राप्त कपास को किसान सामान्यत: घरों, छप्परों अथवा अस्थायी भंडारण स्थलों पर एकत्रित करते हैं और बाद में आवश्यकता अनुसार धीरे-धीरे परिवहन करते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में बार-बार लादना, उतारना एवं भंडारण शामिल होता है, जिससे कपास में बाहरी कचरे एवं संदूषण की मात्रा बढ़ती है तथा गुणवत्ता प्रभावित होती है। यही कारण है कि विदेशों में उपयोग किए जाने वाले बड़े यंत्रीकृत कपास मॉड्यूल भारतीय परिस्थितियों, विशेषकर लघु एवं बहु-चरणीय कृषि प्रणाली, के लिए पूर्णत: उपयुक्त नहीं माने जाते। भारतीय कपास मूल्य शृंखला की वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए लघु स्तर की, कम लागत वाली एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप तकनीकों के विकास की आवश्यकता है।

किसान से उद्योग तक कपास की मूल्य शृंखला

खेत स्तर पर उन्नत फसल उपरांत प्रबंधन तकनीकों एवं यंत्रीकृत प्रणालियों का सीमित उपयोग है।

भारतीय कपास में औसतन 3-8 प्रतिशत तक अपशिष्ट पाया जाता है, जबकि अंतर्राष्ट्रीय मानक 2 प्रतिशत या उससे कम माना जाता है। इस अतिरिक्त संदूषण के कारण किसानों को प्रति क्विंटल लगभग 400-500 रुपये तक कम मूल्य प्राप्त होता है।

ऐसी स्थिति में आवश्यकता है कि कपास में कंटामिनेशन के स्रोतों को खेत स्तर पर ही नियंत्रित करने के लिए प्रभावी एवं नवाचार आधारित तकनीकों को अपनाया जाए। इससे न केवल कपास की गुणवत्ता में सुधार होगा, बल्कि किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होने के साथ भारतीय कपास की वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता भी बढ़ेगी।

विकसित देशों में कपास प्रबंधन की यंत्रीकृत पद्धतियां

संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील एवं ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में कपास के कटाई उपरांत प्रबंधन के लिए अत्यधिक यंत्रीकृत प्रणालियां अपनाई गई हैं। इन देशों में कपास की कटाई मशीनों द्वारा एक ही चरण में की जाती है तथा आधुनिक बेलिंग

विकसित देशों में प्रचलित
कपास कटाई तथा बेलिंग मशीन

मशीनें उसी समय कपास को लगभग 2000-2500 कि.ग्रा. वजन वाले बड़े गोल अथवा बेलनाकार मॉड्यूल्स में संकुचित कर देती हैं।

इन मॉड्यूल्स को विशेष प्रकार की प्लास्टिक फिल्म (70-77 माइक्रॉन) से लपेटकर सीधे ओटाई कारखानों तक पहुंचाया जाता है। इस प्रणाली में मानव हस्तक्षेप अत्यंत कम होता है, जिससे कपास में कचरे एवं संदूषण की मात्रा न्यूनतम रहती है।

साथ ही, भंडारण एवं परिवहन की प्रक्रिया अधिक व्यवस्थित, सुरक्षित एवं दक्ष बन जाती है। इस प्रकार ओटाई कारखानों तक पहुंचने वाली कपास अधिक स्वच्छ, एकसमान एवं बेहतर प्रसंस्करण गुणवत्ता वाली होती है। हालांकि, यह तकनीक मुख्यत: उन देशों के लिए अधिक उपयुक्त है जहां बड़े भू-क्षेत्रों में एकसमान परिपक्व फसलें उगाई जाती हैं तथा बड़े पैमाने पर खेती के कारण यंत्रीकरण की लागत संतुलित हो जाती है।

कपास बेलिंग मशीन से समाधान

कपास के फसल-उपरांत प्रबंधन से जुड़ी चुनौतियों को देखते हुए भारत के लिए स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप एक प्रभावी समाधान की आवश्यकता है। इस दिशा में लघु एवं मध्यम किसानों के लिए कपास बेलिंग मशीन एक महत्वपूर्ण एवं आशाजनक नवाचार के रूप में उभर सकती है। यह मशीन किसानों को खेत स्तर पर ही चुनाई के तुरंत बाद कपास को लगभग 35-50 कि.ग्रा. की सघन गांठों (बेल्स) में परिवर्तित करने की सुविधा प्रदान कर सकती है। बेलिंग प्रक्रिया के दौरान कपास का घनत्व बढ़कर लगभग 200-220 कि.ग्रा. प्रति घन मीटर तक पहुंच सकता है, जिससे भंडारण एवं परिवहन की दक्षता में उल्लेखनीय सुधार संभव है।

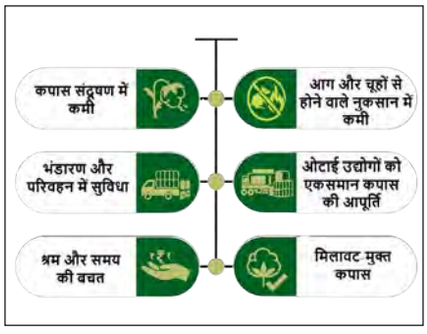

बेलिंग मशीन के लाभ

इस प्रकार तैयार की गई छोटी एवं सघन गांठों को एक व्यक्ति द्वारा आसानी से उठाया एवं संभाला जा सकता है। ढीली कपास की तुलना में इन गांठों को सीमित स्थान में सुरक्षित रूप से संग्रहित किया जा सकता है, जिससे भंडारण अधिक व्यवस्थित एवं कुशल बनता है।

इसके अतिरिक्त, सघन बेलिंग के कारण कपास मौसमजनित प्रभावों जैसे धूल, वर्षा एवं नमी से बेहतर रूप से सुरक्षित रह सकती है। एक बार में अधिक मात्रा में कपास का परिवहन संभव होने से ईंधन एवं परिवहन लागत में भी कमी आने की संभावना रहती है। इस प्रकार कपास बेलिंग मशीन न केवल गुणवत्ता संरक्षण में सहायक सिद्ध हो सकती है, बल्कि संपूर्ण कपास मूल्य श्रृंखला को अधिक दक्ष, किफायती एवं टिकाऊ बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

कपास का ढीलापन और भंडारण की समस्या

कपास की एक प्रमुख समस्या उसका अत्यधिक फुलाव एवं कम घनत्व है। खुले रूप में रखी गई कपास अधिक स्थान घेरती है, जबकि उसका वजन अपेक्षाकृत कम होता है। सामान्यत: ढीली कपास का घनत्व लगभग 100-120 कि.ग्रा. प्रति घन मीटर होता है, जिसके कारण भंडारण एवं परिवहन की दक्षता प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए, लगभग 100 वर्ग फीट (करीब 9 वर्ग मीटर) के घरेलू भंडारण क्षेत्र में 8-10 फीट ऊंचाई तक केवल 8-10 क्विंटल कपास ही सुरक्षित रखी जा सकती है, जबकि इसी स्थान में अन्य फसलों की कहीं अधिक मात्रा संग्रहित की जा सकती है। कपास की इस फुलावट के कारण उसके संचालन, भंडारण एवं परिवहन में अतिरिक्त श्रम, समय एवं लागत लगती है। साथ ही बार-बार हैंडलिंग से कपास में धूल, मृदा एवं अन्य बाहरी उत्पादों के मिश्रण की आशंका भी बढ़ जाती है, जिससे गुणवत्ता प्रभावित होती है। इस प्रकार कपास के सघनीकरण एवं वैज्ञानिक भंडारण तकनीकों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है, ताकि भंडारण क्षमता बढ़ाई जा सके तथा परिवहन एवं प्रबंधन को अधिक कुशल बनाया जा सके।

बेलिंग तकनीक से बनी कपास की गांठ

भारत का कपास उद्योग वर्तमान में चुनाई-पश्चात प्रबंधन से जुड़ी अनेक चुनौतियों, विशेषकर अधिक कचरा, अक्षम भंडारण एवं महंगे परिवहन का सामना कर रहा है। विकसित देशों में प्रचलित बड़े यंत्रीकृत समाधान भारतीय कृषि परिस्थितियों, विशेषकर छोटे एवं बिखरे भूखंडों वाली प्रणाली के लिए पूरी तरह उपयुक्त नहीं हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय किसानों की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित कपास बेलिंग मशीन एक व्यावहारिक एवं प्रभावी समाधान सिद्ध हो सकती है। यह तकनीक खेत स्तर पर ही कपास को सघन एवं व्यवस्थित गांठों में परिवर्तित कर रखरखाव, भंडारण एवं परिवहन को अधिक सरल एवं कुशल बनाएगी। इसके परिणामस्वरूप कपास में संदूषण की मात्रा कम होगी, भंडारण क्षमता बढ़ेगी तथा परिवहन लागत में कमी आएगी।

साथ ही, बेहतर गुणवत्ता वाली कपास के कारण किसानों को अधिक मूल्य प्राप्त होने की संभावना भी बढ़ेगी। यदि ओटाई उद्योगों द्वारा गांठ बंद कपास के लिए प्रोत्साहन अथवा उच्च मूल्य प्रदान किया जाए, तो किसानों की आय में और अधिक वृद्धि संभव होगी।

इस प्रकार, कपास बेलिंग तकनीक का प्रभावी कार्यान्वयन न केवल रेशे की गुणवत्ता संरक्षण में सहायक होगा, बल्कि संपूर्ण कपास मूल्य श्रृंखला को अधिक संगठित, दक्ष एवं आर्थिक रूप से मजबूत बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। ■

सतत कृषि में लाभकारी है मसूर उत्पादन

ज्योत्स्नारानी प्रधान[1], हेमलता सिंह[1], गीता कुमारी[1], अमन जयसवाल[2] और आशुतोष कुमार[3]

"मसूर न केवल पोषण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, बल्कि यह किसानों के लिए एक लाभकारी और बहुउद्देशीय फसल के रूप में भी उभर रही है। इसकी खेती में सिंचाई एवं रासायनिक उर्वरकों की अपेक्षाकृत कम आवश्यकता होती है, जिससे उत्पादन लागत घटती है और लाभांश में वृद्धि होती है। साथ ही, यह एक नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली दलहनी फसल है, जो मृदा की उर्वरता में सुधार कर फसलचक्र को संतुलित बनाए रखने में सहायक होती है। परिणामस्वरूप, किसान बेहतर उपज के साथ-साथ टिकाऊ खेती की दिशा में भी आगे बढ़ते हैं। भारत में पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करने तथा दालों के आयात पर निर्भरता कम करने के प्रयासों के बीच मसूर की उपयोगिता पुनः केंद्र में आ गई है। यह अब केवल पारंपरिक दाल तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि पोषण समृद्ध, पर्यावरण अनुकूल और आर्थिक रूप से व्यवहार्य विकल्प के रूप में स्थापित हो रही है। बदलते जलवायु परिदृश्य में यह फसल देश की खाद्य प्रणाली को अधिक लचीला एवं टिकाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।"

पोषण की दृष्टि से मसूर प्रोटीन, फाइबर, आयरन तथा फोलेट का सस्ता एवं सुलभ स्रोत है। विशेष रूप से महिलाओं एवं बच्चों में कुपोषण और एनीमिया की समस्या को कम करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही, शहरी उपभोक्ताओं में शाकाहारी जीवनशैली एवं स्वास्थ्यवर्धक खाद्य उत्पादों के प्रति बढ़ती जागरूकता ने भी इसकी मांग को बढ़ावा दिया है।

हालांकि, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव मसूर उत्पादन के लिए चुनौती बनते जा रहे हैं। पुष्पण एवं फली बनने की अवस्था में उच्च तापमान या असमय वर्षा बीज निर्माण को प्रभावित कर सकती है। इस परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिकों द्वारा जलवायु सहनशील किस्मों के विकास, जैविक खेती तथा जल संरक्षण तकनीकों पर निरंतर कार्य किया जा रहा है, ताकि मसूर को एक सुदृढ़ एवं टिकाऊ फसल के रूप में स्थापित किया जा सके।

स्पष्ट है कि मसूर के व्यापक प्रसार हेतु नीति, अनुसंधान एवं उपभोक्ता व्यवहार के बीच समन्वय अत्यंत आवश्यक है। यह फसल न केवल किसानों की आय बढ़ाने में सहायक है, बल्कि पोषण सुरक्षा एवं पर्यावरण संरक्षण की दिशा में भी एक सशक्त विकल्प के रूप में उभर रही है।

फसल उत्पादन में योगदान

भारत में मसूर का योगदान दलहनी फसलों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वर्ष 2025-26 के उत्पादन अनुमान के अनुसार, देश में इसका कुल उत्पादन लगभग 17.33 लाख टन तक होगा, जो कुल दलहन उत्पादन (लगभग 275 लाख टन) का लगभग 5-6 प्रतिशत है। मसूर मुख्यतः रबी मौसम की फसल है और इसकी खेती लगभग 17-18 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में की जाती है।

देश में मसूर का सर्वाधिक उत्पादन उत्तर प्रदेश (लगभग 36 प्रतिशत) मध्य प्रदेश (लगभग 35 प्रतिशत), पश्चिम बंगाल तथा बिहार (लगभग 10 प्रतिशत) में होता है। उत्पादन के साथ-साथ मसूर का महत्व

पोषक एवं स्वास्थ्यवर्धक

मसूर प्रोटीन, फाइबर, आयरन, फोलेट तथा अन्य आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों का सस्ता एवं सुलभ स्रोत है। विशेष रूप से महिलाओं एवं बच्चों में कुपोषण तथा एनीमिया की समस्या को कम करने में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। यह न केवल आहार को पौष्टिक बनाती है, बल्कि संतुलित आहार का एक अनिवार्य घटक भी है, जो शरीर की प्रतिरक्षा क्षमता को मजबूत करने में सहायक होता है। पोषण विशेषज्ञों के अनुसार, दैनिक आहार में मसूर को शामिल करना पोषण सुरक्षा की दिशा में एक प्रभावी कदम है। नियमित सेवन से यह हृदय स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखने, मधुमेह नियंत्रण में सहायता करने तथा पाचन तंत्र को सुदृढ़ करने में सहायक होती है। साथ ही, पर्यावरण की दृष्टि से भी यह एक टिकाऊ खाद्य विकल्प है, क्योंकि इसकी खेती में संसाधनों की कम आवश्यकता होती है।

[1]वनस्पति विज्ञान, पादप शरीर क्रिया विज्ञान और जैव रसायन विभाग; [2]माइक्रोबायोलॉजी विभाग, आधार विज्ञान और मानविकी महाविद्यालय, डा. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, समस्तीपुर, बिहार 848125; [3]कृषि महाविद्यालय, रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झांसी-284003

मृदा स्वास्थ्य सुधार में भी है, क्योंकि यह एक नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली दलहनी फसल है, जो मृदा की उर्वरता बढ़ाने में सहायक होती है।

इसके अतिरिक्त, मसूर कम पानी एवं सीमित उर्वरकों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है, जिससे यह लघु एवं सीमांत किसानों के लिए अत्यंत उपयुक्त फसल बन जाती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मसूर का बढ़ता उत्पादन न केवल देश की पोषण सुरक्षा को सुदृढ़ करता है, बल्कि दालों के आयात पर निर्भरता घटाने तथा किसानों की आय बढ़ाने के राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

कृषकों को लाभ

कम लागत में अधिक आय

मसूर अपेक्षाकृत कम लागत वाली फसल है। प्रति हैक्टर लगभग 15,000-20,000 रुपये के निवेश में 10-12 क्विंटल तक उपज प्राप्त की जा सकती है। विपणन वर्ष 2025-26 के लिए सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य 7,000 रुपये प्रति क्विंटल है, जिसके आधार पर प्रति हैक्टर लगभग 65,000-80,000 रुपये तक आय संभव है। इस प्रकार शुद्ध लाभ 40,000-55,000 रुपये तक प्राप्त किया जा सकता है, जो कई अन्य रबी फसलों की तुलना में अधिक है।

जैविक लाभ एवं मृदा सुधार

मसूर एक दलहनी फसल होने के कारण नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता रखती है। यह वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मृदा में संचित कर मृदा की उर्वरता बढ़ाती है, जिससे अगली फसल को भी लाभ मिलता है तथा रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता घटती है।

पोषण, उत्पादन और पर्यावरण के लिए लाभकारी मसूर

सारणी: भारतीय पोषण संस्थान के अनुसार, 100 ग्राम पकी हुई मसूर में मौजूद पोषक तत्व

पोषक तत्व	मात्रा (100 ग्राम में)	प्रमुख लाभ
ऊर्जा	116 किलो कैलोरी	शरीर को आवश्यक ऊर्जा प्रदान करता है
प्रोटीन	9.0 ग्राम	मांसपेशियों की वृद्धि एवं ऊतकों की मरम्मत में सहायक
फाइबर	7.9 ग्राम	पाचन क्रिया को सुधारता है एवं कब्ज की समस्या कम करता है
आयरन	3.3 मि.ग्रा	एनीमिया की रोकथाम में सहायक, हीमोग्लोबिन बढ़ाता है
फोलेट	180 माइक्रोग्राम	गर्भवती महिलाओं में शिशु के विकास के लिए आवश्यक
पोटेशियम	369 मि.ग्रा	रक्तचाप को नियंत्रित रखने में सहायक
मैग्नीशियम	36 मि.ग्रा	तंत्रिका तंत्र एवं हड्डियों के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी
जिंक	1.3 मि.ग्रा	रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है
विटामिन बी$_1$	0.2 मि.ग्रा	मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र के सुचारु कार्य में सहायक
वसा	0.4 ग्राम से कम	कोलेस्ट्रॉल मुक्त, हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी

बदलती जलवायु में भी अनुकूल

भारत, विश्व का प्रमुख मसूर उत्पादक एवं उपभोक्ता देश है, फिर भी जलवायु परिवर्तन के बढ़ते प्रभावों के कारण इसका उत्पादन मांग के अनुरूप नहीं हो पा रहा है। मसूर मुख्यत: रबी मौसम की फसल है, जो वर्तमान में तापमान वृद्धि और असमय वर्षा जैसी चुनौतियों का सामना कर रही है। विशेषकर पुष्पण एवं फली बनने की अवस्था में उच्च तापमान परागण को प्रभावित करता है, जिससे बीज बनने की दर में कमी आती है। भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान के अनुसार, यदि पौधों की वृद्धि अवधि में तापमान 30 डिग्री सेल्सियस से अधिक हो जाए, तो उपज में 30-50 प्रतिशत तक कमी संभव है। वैज्ञानिकों के अनुसार, मसूर की प्रजनन अवस्था तापमान के प्रति अत्यंत संवेदनशील होती है और हल्की वृद्धि भी बीज निर्माण को बाधित कर सकती है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए वैज्ञानिक पारंपरिक एवं आधुनिक आणविक तकनीकों की सहायता से जलवायु सहनशील किस्मों के विकास पर कार्य कर रहे हैं। उच्च तापमान सहनशीलता, शीघ्र पुष्पण तथा जल उपयोग दक्षता जैसे गुणों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। भाकृअनुप द्वारा विकसित आईपीएल-316 एवं आईपीएल-406 जैसी किस्में उच्च तापमान परिस्थितियों में बेहतर प्रदर्शन कर रही हैं। इसके अतिरिक्त, जीनोम फेरबदल जैसी उन्नत तकनीकों के माध्यम से नई किस्मों के चयन एवं सुधार पर भी अनुसंधान जारी है। साथ ही, जैविक खेती एवं एकीकृत कृषि प्रणालियों में मसूर की भूमिका को सुदृढ़ करने के प्रयास किए जा रहे हैं, जिससे यह एक बहुउद्देशीय टिकाऊ फसल के रूप में स्थापित हो सके।

जोखिम कम, लाभ अधिक

यह फसल कम सिंचाई, सीमित कीटनाशक उपयोग तथा न्यून देखभाल में भी अच्छी उपज देती है। यही कारण है कि यह फसल लघु एवं सीमांत किसानों के लिए उपयुक्त एवं कम जोखिम वाली आय का स्रोत मानी जाती है।

अवसर

बढ़ती उपभोक्ता मांग-विशेषकर प्रोटीनयुक्त आहार, जैविक उत्पाद एवं प्रसंस्करित खाद्य (जैसे हेल्दी स्नैक्स, आटा/पाउडर) ने मसूर के बाजार को व्यापक बनाया है। 'ईट राइट इंडिया' जैसी पहलों के चलते दलहनों के प्रति जागरूकता बढ़ी है, जिससे किसानों के लिए मूल्य संवर्धन एवं बेहतर बाजार अवसर उपलब्ध हो रहे हैं।

मसूर अब केवल एक पारंपरिक दाल नहीं रही, बल्कि यह पोषण सुरक्षा, जलवायु अनुकूल खेती एवं ग्रामीण आय के स्थिरीकरण का सशक्त माध्यम बन चुकी है। बदलते कृषि परिदृश्य में इसकी बढ़ती प्रासंगिकता यह दर्शाती है कि यदि शोध, नीतिगत समर्थन एवं उपभोक्ता व्यवहार में समन्वय स्थापित किया जाए, तो मसूर भविष्य की टिकाऊ एवं लचीली खाद्य प्रणाली का आधार बन सकती है।

श्री अन्न फसलों में रोगों की रोकथाम

संजीव कुमार[1], सी.एस. आजाद[1], देवेन्द्र मंडल[1] और **राकेश कुमार[2]**

" भारत में उगाए जाने वाले श्री अन्न के अंतर्गत मुख्यत: ज्वार, बाजरा, सांवा, कोदो, कुटकी तथा रागी जैसी फसलें शामिल हैं। ये फसलें न केवल पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं, बल्कि पारंपरिक खाद्यान्न गेहूं और धान की तुलना में कई मामलों में अधिक लाभकारी भी मानी जाती हैं। इसी कारण आज इन्हें 'पोषक अनाज' के रूप में विशेष पहचान प्राप्त हो रही है। कई श्री अन्न फसलों में प्रोटीन की मात्रा गेहूं के लगभग समान होती है, जबकि विटामिन बी, लौह, फॉस्फोरस, कैल्शियम एवं अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों की दृष्टि से ये अधिक समृद्ध होते हैं। श्री अन्न की सबसे बड़ी विशेषता इसकी जलवायु सहनशीलता है। ये फसलें कम वर्षा, अधिक तापमान, सूखा तथा अम्लीय भूमि जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त, श्री अन्न की फसलें कम लागत में उत्पादन देने वाली होने के कारण छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए भी लाभकारी हैं। हालांकि, अन्य फसलों की तरह श्री अन्न भी विभिन्न रोगों एवं कीटों से प्रभावित हो सकती हैं। अत: समय पर पहचान एवं उचित प्रबंधन अपनाकर फसल को नुकसान से बचाया जा सकता है तथा भविष्य की पोषण एवं खाद्य सुरक्षा आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित की जा सकती है। "

[1]पौधा रोग विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर-813210 (बिहार); [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक, भाकृअनुप का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना-800014 (बिहार)

तेजी से बदलती जलवायु, बढ़ती पोषण संबंधी चुनौतियों और टिकाऊ कृषि की आवश्यकता के बीच श्री अन्न फसलें एक सशक्त समाधान के रूप में उभर रही हैं। यही कारण है कि भारत में भी इनके उत्पादन, उपभोग और प्रसंस्करण को निरंतर प्रोत्साहित किया जा रहा है। हालांकि श्री अन्न फसलें अपेक्षाकृत अधिक सहनशील मानी जाती हैं, फिर भी विभिन्न रोग एवं कीट इनके उत्पादन और गुणवत्ता को प्रभावित कर सकते हैं। समय पर रोगों की पहचान एवं समुचित प्रबंधन अपनाकर फसल को होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है। श्री अन्न में लगने वाले निम्न प्रमुख रोग का प्रबंधन इस प्रकार हैं:

तुलासिता अथवा हरित बाली रोग

यह बाजरे की फसल का एक प्रमुख एवं गंभीर रोग है। रोग के प्रारंभिक लक्षण 15-20 दिनों की अवस्था वाले पौधों में दिखाई देते हैं, जिसमें पत्तियां पीली पड़ने लगती हैं। पत्तियों की निचली सतह पर कवक की सफेद वृद्धि दिखाई देती है तथा पत्तियों पर समानांतर पीली धारियां बन जाती हैं। रोग बढ़ने पर ये धारियां भूरे रंग की हो जाती हैं और पत्तियां सिरे से फटकर चिथड़ों जैसी दिखाई देने लगती हैं।

इस रोग का सबसे प्रमुख लक्षण बालियों में दिखाई देता है, जहां दानों के स्थान पर पूरी

कंडुआ रोग का प्रभाव

बाली अथवा उसका कुछ भाग छोटी-छोटी हरी मुड़ी हुई पत्तियों जैसी संरचनाओं में परिवर्तित हो जाता है। इसी कारण इसे 'हरित बाली रोग' कहा जाता है। रोग के अधिक प्रकोप से दाना निर्माण प्रभावित होता है तथा उत्पादन में भारी कमी आ सकती है।

काला धब्बा रोग

यह रोग ज्वार के प्रमुख एवं हानिकारक रोगों में से एक है। इसके प्रारंभिक लक्षणों में पत्तियों पर छोटे-छोटे लाल, बैंगनी अथवा भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। संक्रमण प्राय: पौधे के निचले भाग एवं पुरानी पत्तियों पर अधिक देखा जाता है, जबकि नई पत्तियां सामान्यत: प्रभावित नहीं होतीं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर धब्बों का आकार बड़ा हो जाता है तथा उनके मध्य भाग में काले रंग के बिंदु स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। इससे पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

काला धब्बा रोग का संक्रमण

प्रबंधन

- रोगमुक्त एवं प्रतिरोधी किस्मों का चयन कर बुआई करें।
- फसलचक्र अपनाकर नियमित रूप से फसलों की अदल-बदल करें।
- संक्रमित फसल अवशेषों को खेत से हटाकर नष्ट करें।
- बुआई से पूर्व बीज को थीरम अथवा कैप्टॉन 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देते ही कार्बेण्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 15 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें।

प्रबंधन

- रोगरोधी किस्मों एवं संकरों जैसे आरसीबी-2, आईसीएमएच-88088, एएचबी-5, एनएचबी-10 एवं एनएचबी-14 की बुआई करें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें, जिससे रोगजनक नष्ट हो सकें।
- खेत में रोगग्रस्त पौधे दिखाई देते ही उन्हें उखाड़कर जला दें अथवा गड्ढे में दबा दें।
- खेत में गोबर की खाद एवं उर्वरकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग करें।
- बुआई से पूर्व बीजोपचार अवश्य करें तथा स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का उपयोग करें।

कंडुवा (स्मट) रोग

यह रोग मोटे अनाज उगाए जाने वाले अधिकांश क्षेत्रों में पाया जाता है तथा मुख्यत: दाना बनने की अवस्था में दिखाई देता है। रोगग्रस्त बालियों में सामान्य दानों के स्थान पर चमकीले हरे अथवा चॉकलेट रंग के बड़े दाने विकसित हो जाते हैं, जो सामान्य दानों की तुलना में लगभग डेढ़ से दो गुना बड़े होते हैं। ये दाने अंडाकार दिखाई देते हैं। रोग बढ़ने पर इनका रंग धीरे-धीरे गहरे भूरे अथवा काले चूर्ण में परिवर्तित हो जाता है, जिससे दाना गुणवत्ता एवं उत्पादन दोनों प्रभावित होते हैं।

प्रबंधन

- बुआई के लिए प्रमाणित एवं स्वस्थ बीजों का उपयोग करें।
- रोगग्रस्त बालियों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें।
- गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें, जिससे रोगजनक नष्ट हो सकें।
- आईसीएमवी-155, आईसीटीपी-8203 एवं डब्ल्यूसीसी-175 जैसी रोगरोधी किस्मों की बुआई करें।
- बुआई से पूर्व बीज को थीरम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।
- बालियां निकलने की अवस्था में प्रोपिकोनाजोल अथवा हेक्साकोनाजोल 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करें।

पत्ती धब्बा (ब्लास्ट) रोग

इस रोग से संक्रमित पौधों की पत्तियों पर आंख अथवा तकली के आकार के धब्बे दिखाई देते हैं, जिनका मध्य भाग धूसर तथा किनारे पीले-भूरे रंग के होते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर ये धब्बे आपस में

तुलासिता अथवा हरित बाली रोग

मिलकर पत्तियों को झुलसा देते हैं। रोग का संक्रमण बालियों की ग्रीवा एवं अंगुलिकाओं पर भी होता है। ग्रीवा का प्रभावित भाग

अर्गट रोग

यह रोग मुख्यत: बाजरा एवं अन्य श्री अन्न फसलों की बालियों में पुष्पण अवस्था के दौरान दिखाई देता है। रोग के प्रारंभिक लक्षण दाना बनने से पहले गुलाबी अथवा शहद जैसी चिपचिपी छोटी-छोटी बूंदों के रूप में प्रकट होते हैं, जिसे 'हनीड्यू अवस्था' कहा जाता है। रोग बढ़ने पर फसल पकने के साथ यह हनीड्यू समाप्त हो जाता है तथा दानों के स्थान पर गहरे भूरे अथवा बैंगनी रंग की कठोर संरचनाएं विकसित हो जाती हैं, जिन्हें स्क्लेरोशिया कहा जाता है। रोग के प्रकोप से दाना निर्माण प्रभावित होता है तथा उपज एवं गुणवत्ता दोनों में कमी आती है।

प्रबंधन

- बुआई के लिए स्क्लेरोशिया रहित स्वच्छ एवं प्रमाणित बीज का ही उपयोग करें।
- बीज को 20 प्रतिशत नमक के घोल में लगभग 5 मिनट तक डुबोएं तथा ऊपर तैरते स्क्लेरोशिया को निकालकर नष्ट कर दें।
- बुआई से पूर्व बीज को थीरम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।
- बालियां निकलने के समय मौसम में अधिक नमी अथवा बादल रहने पर मैंकोजेब 1 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

भूरा धब्बा रोग

इस रोग का संक्रमण पौधे की सभी अवस्थाओं में हो सकता है। प्रारंभ में पत्तियों पर छोटे-छोटे हल्के भूरे रंग के अंडाकार धब्बे दिखाई देते हैं, जो बाद में गहरे भूरे रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर ये धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों को समय से पूर्व सुखा देते हैं। रोग का प्रभाव बालियों एवं दानों पर भी पड़ता है, जिससे दानों का समुचित विकास नहीं हो पाता और वे सिकुड़ जाते हैं। परिणामस्वरूप उपज एवं गुणवत्ता दोनों में भारी कमी आती है।

रोग प्रबंधन

- बुआई से पूर्व बीज को कार्बेण्डाजिम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।
- खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैंकोजेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 10-12 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।
- रोगरोधी किस्मों का चयन कर बुआई करें।

भूरा धब्बा रोग से ग्रसित बालियां

काला पड़ जाता है, जिससे बालियां संक्रमित स्थान से टूटकर लटक जाती हैं अथवा गिर जाती हैं। अंगुलिकाएं आंशिक या पूर्ण रूप से सूख जाती हैं, जिससे उपज की मात्रा एवं गुणवत्ता दोनों प्रभावित होती हैं।

प्रबंधन

- रोगग्रस्त बालियों एवं संक्रमित पौध अवशेषों को एकत्र कर नष्ट कर दें।
- बुआई से पूर्व बीज को वीटावैक्स 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।
- रोग के लक्षण दिखाई देते ही हेक्साकोनाजोल 0.1 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें।
- स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स 0.2 प्रतिशत का पर्णीय छिड़काव रोग के संक्रमण को कम करने में सहायक होता है।
- जी.पी.यू.-45, चिलिका एवं भैरवी जैसी रोग प्रतिरोधी किस्मों की बुआई करें।

रतुआ (रस्ट) रोग

रतुआ रोग से प्रभावित पौधों की निचली पत्तियों पर लाल-भूरे रंग की छोटी-छोटी फुंसियां उभर आती हैं। फसल पकने के साथ इनका रंग गहरा भूरा हो जाता है। ये फुंसियां पत्तियों की दोनों सतहों पर बनती हैं, लेकिन सामान्यत: ऊपरी सतह पर अधिक दिखाई देती हैं। रोग की तीव्र अवस्था में ये फुंसियां आपस में मिलकर बड़े धब्बों का रूप ले लेती हैं तथा पत्तियों के अतिरिक्त उनके आवरण पर भी दिखाई देने लगती हैं। इससे पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्षमता प्रभावित होती है तथा उत्पादन में कमी आती है।

रोग प्रबंधन

- खेत की नियमित निगरानी कर रोगग्रस्त पत्तियों एवं पौध अवशेषों को नष्ट करें।
- संतुलित उर्वरक प्रबंधन अपनाएं तथा खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें।
- रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देते ही प्रोपिकोनाजोल या हेक्साकोनाजोल 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करें।
- रोगरोधी एवं प्रमाणित किस्मों की बुआई को प्राथमिकता दें।

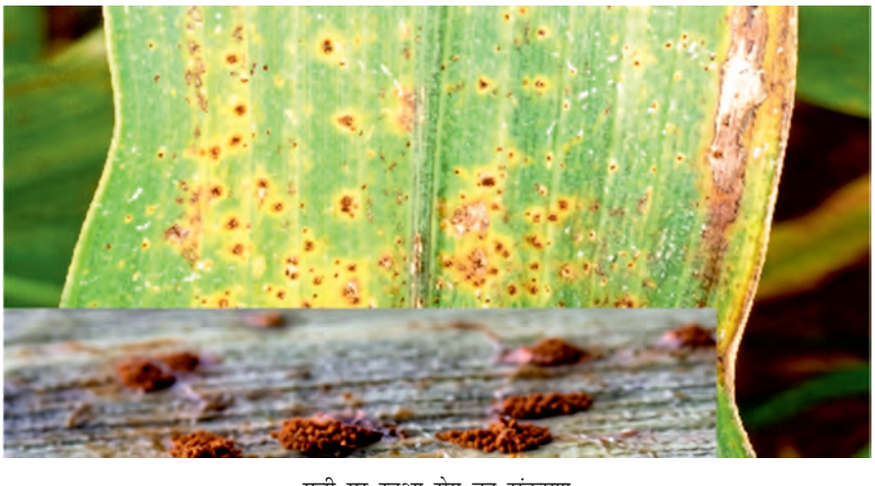

पत्ती पर रतुआ रोग का संक्रमण

फसलों में लगने वाले रोग, विश्वभर में खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती माने जाते हैं। प्रत्येक वर्ष रोगों के कारण फसलों की गुणवत्ता एवं उत्पादन में भारी कमी आती है। बदलती जलवायु परिस्थितियां इस समस्या को और गंभीर बना रही हैं, जिससे वैश्विक खाद्य एवं पोषण सुरक्षा पर संकट उत्पन्न हो रहा है। ऐसी स्थिति में समेकित रोग प्रबंधन उपायों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। किसान यदि समय पर रोगों की पहचान कर उचित प्रबंधन अपनाएं, तो वे न केवल फसल को नुकसान से बचा सकते हैं, बल्कि बेहतर उत्पादन एवं अधिक आय प्राप्त कर खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को भी मजबूत बना सकते हैं।

कृषि में सस्य विज्ञान की बढ़ती भूमिका

शुभ्रांशु सिंह[1], राहुल यादव[2], विनायक प्रताप शाही[3], अमन सिंह[3] और देवेश पाठक[3]

“खेती मानव सभ्यता की आधारशिला रही है, किंतु बदलते पर्यावरणीय, सामाजिक एवं आर्थिक परिदृश्य ने इसे नए दृष्टिकोण से समझने की आवश्यकता उत्पन्न कर दी है। आज की कृषि केवल परंपरागत ज्ञान तक सीमित नहीं रह सकती, बल्कि इसे वैज्ञानिक आधार पर विकसित करना समय की मांग है। ऐसे में सस्य विज्ञान (एग्रोनॉमी) प्रणाली खेती को अधिक तर्कसंगत, टिकाऊ एवं लाभकारी बनाने की क्षमता रखती है। यह न केवल उत्पादन बढ़ाने में सहायक है, बल्कि संसाधनों के संतुलित उपयोग के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण और किसानों की आय वृद्धि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह लेख खेती के भविष्य को मानवीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत करते हुए यह रेखांकित करता है कि मृदा, जल, बीज, पोषण एवं तकनीक के बीच समन्वय स्थापित कर किस प्रकार किसान को सशक्त बनाया जा सकता है। जब वैज्ञानिक सोच संवेदनशील एवं व्यावहारिक रूप में खेत तक पहुंचती है, तब खेती केवल उत्पादन का साधन नहीं रह जाती, बल्कि एक संतुलित एवं टिकाऊ जीवन पद्धति का रूप ले लेती है।”

खेती केवल बीज बोने और फसल काटने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह प्रकृति, किसान और विज्ञान के बीच निरंतर चलने वाला एक जीवंत संवाद है। सदियों से किसान अपने अनुभव, परंपरागत ज्ञान और प्रकृति के संकेतों को समझते हुए खेती करते आए हैं। मौसम के बदलाव, मृदा की स्थिति और फसल की प्रतिक्रिया के आधार पर वह अपने निर्णय स्वयं लेते रहे हैं। किन्तु वर्तमान समय में कृषि परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। जलवायु परिवर्तन, मृदा उर्वरता में कमी, बढ़ती जनसंख्या, खाद्य सुरक्षा की चुनौती तथा सीमित प्राकृतिक संसाधनों ने खेती को पहले की तुलना में अधिक जटिल बना दिया है।

ऐसे परिवेश में केवल अनुभव और परंपरा पर आधारित खेती पर्याप्त नहीं रह गई है। इसी संदर्भ में सस्य विज्ञान प्रणाली एक सुदृढ़ आधार के रूप में उभर रही है, जो खेती को अनुमान से निकालकर समझ, योजना और संतुलन की दिशा में ले जाती है। यह न केवल उत्पादन वृद्धि पर बल देती है, बल्कि संसाधनों के संरक्षण, लागत नियंत्रण एवं पर्यावरणीय संतुलन को भी समान महत्व प्रदान करती है।

[1]कृषि विस्तार प्रभाग, भाकृअनुप, कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा नई दिल्ली-110012; [2]रामा विश्वविद्यालय कानपुर (उत्तर प्रदेश); [3]आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या-224229 (उत्तर प्रदेश)

जलवायु परिवर्तन हेतु नीतियां

वर्तमान समय में बदलता मौसम खेती के लिए सबसे बड़ी चुनौती बनकर उभरा है। असमय वर्षा, लंबे सूखे, अचानक तापमान वृद्धि तथा अनिश्चित मौसमी व्यवहार ने पारंपरिक कृषि कैलेंडर की विश्वसनीयता को प्रभावित किया है। ऐसे परिदृश्य में सस्य विज्ञान प्रणाली मौसम की अनिश्चितताओं को ध्यान में रखते हुए खेती की रणनीतियों को पुनः परिभाषित करती है। मृदा की नमी, तापमान के प्रभाव तथा फसल की सहनशीलता के आधार पर बुआई का समय निर्धारित करना आवश्यक हो गया है। साथ ही, मौसम के अनुरूप उपयुक्त फसल किस्मों का चयन एवं प्रबंधन निर्णय किसानों को बदलती परिस्थितियों में संतुलन बनाए रखने में मदद करते हैं। इससे खेती अधिक लचीली एवं जोखिम सहनशील बनती है।

स्पष्ट है कि भविष्य की खेती में सस्य विज्ञान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण एवं निर्णायक होने जा रही है, जो किसानों को अधिक सक्षम, जागरूक और आत्मनिर्भर बनाने में सहायक सिद्ध होगी।

यह प्रणाली फसल, मृदा, जल एवं जलवायु के परस्पर संबंधों को समझने का विज्ञान है। यह स्पष्ट करती है कि खेती कोई अलग प्रक्रिया नहीं, बल्कि विभिन्न प्राकृतिक घटकों के समन्वय का परिणाम है। विज्ञान आधारित सस्य विज्ञान किसान को यह समझने में सक्षम बनाती है कि कौन सी फसल किस प्रकार की मृदा में अधिक उपयुक्त है, बुआई का सही समय क्या हो तथा फसल को कब और कितनी मात्रा में जल एवं पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है।

इस दृष्टिकोण में निर्णय अनुमान के आधार पर नहीं, बल्कि अवलोकन, विश्लेषण एवं तथ्यों पर आधारित होते हैं। जब किसान इन वैज्ञानिक पहलुओं को अपनाता है, तो उत्पादन अधिक स्थिर होता है, जोखिम कम होता है और संसाधनों का उपयोग अधिक दक्षता से किया जा सकता है। इस प्रकार सस्य विज्ञान खेती को केवल श्रम आधारित कार्य न रखकर एक सुविचारित एवं वैज्ञानिक उद्यम के रूप में स्थापित करती है।

मृदा स्वास्थ्य में सस्य विज्ञान

एक ही फसल की बार-बार खेती, असंतुलित उर्वरक उपयोग तथा रासायनिक

निर्भरता ने मृदा की प्राकृतिक उर्वरता को प्रभावित किया है।

ऐसे में सस्य विज्ञान प्रणाली मृदा को केवल उत्पादन का माध्यम नहीं, बल्कि एक जीवित तंत्र के रूप में देखती है। मृदा परीक्षण, जैविक कार्बन का संरक्षण, सूक्ष्मजीवों की सक्रियता तथा फसल अवशेष प्रबंधन जैसे पहलू इसके महत्वपूर्ण अंग हैं। जब किसान मृदा की वास्तविक आवश्यकता को समझकर संतुलित पोषण प्रदान करता है, तो मृदा की उर्वरता दीर्घकाल तक बनी रहती है और फसलें अधिक स्वस्थ एवं उत्पादक होती हैं।

इस प्रकार, सस्य विज्ञान प्रणाली न केवल वर्तमान उत्पादन को सुदृढ़ करती है, बल्कि भविष्य की टिकाऊ कृषि की नींव भी मजबूत करती है।

जल प्रबंधन

जल संसाधन आज खेती के सबसे संवेदनशील पहलुओं में शामिल हो चुके हैं। भूमिगत जल स्तर में निरंतर कमी और सतही जल पर बढ़ती निर्भरता ने स्थिति को और चुनौतीपूर्ण बना दिया है। ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक बूंद के महत्व को समझते हुए जल के विवेकपूर्ण उपयोग पर बल देती है।

फसल की वास्तविक जल आवश्यकता, उसकी वृद्धि अवस्था के अनुसार सिंचाई तथा जल संरक्षण उपायों का समन्वय खेती को अधिक प्रभावी बनाता है। जब किसान यह समझता है कि अधिक पानी हमेशा लाभकारी नहीं होता, तब वह सिंचाई को वैज्ञानिक तरीके से अपनाता है। इससे जल की बचत होती है, पौधों की जड़ें मजबूत होती हैं और उत्पादन में स्थिरता आती है।

जीरो फर्टी सीडड्रिल से बीज की बुआई

फसल पोषण, विविधीकरण और जोखिम प्रबंधन

परंपरागत रूप से उर्वरक उपयोग को उत्पादन वृद्धि का प्रमुख साधन माना जाता रहा है, किंतु अब यह दृष्टिकोण बदल रहा है। सस्य विज्ञान प्रणाली स्पष्ट करती है कि फसल को संतुलित एवं आवश्यकतानुसार पोषण देना ही अधिक लाभकारी है। इससे न केवल उत्पादन की गुणवत्ता बेहतर होती है, बल्कि लागत भी नियंत्रित रहती है।

इसके साथ ही, फसल विविधीकरण, अंतर-फसली खेती एवं फसलचक्र जैसे उपाय किसानों को आय के नए अवसर प्रदान करते हैं। यह दृष्टिकोण किसी एक फसल पर निर्भरता को कम करता है तथा जोखिम के प्रभाव को घटाता है, जिससे खेती अधिक सुरक्षित एवं आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनती है।

तकनीक, किसान और सस्य विज्ञान का समन्वय

आधुनिक तकनीक और सस्य विज्ञान का समन्वन खेती को नई दिशा प्रदान कर रहा है। अब फसल प्रबंधन केवल अनुमान पर नहीं, बल्कि वास्तविक आंकड़ों और वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित होता जा रहा है। इससे किसान और वैज्ञानिक के बीच की दूरी कम हो रही है और किसान स्वयं अपने खेत का विश्लेषण करने में सक्षम बन रहा है।

हालांकि, इस परिवर्तन के मार्ग में ज्ञान की कमी, सीमित संसाधन और प्रारंभिक झिझक जैसी चुनौतियां मौजूद हैं। लेकिन जब किसान वैज्ञानिक पद्धतियों के लाभ कम लागत, बेहतर फसल और स्थिर आय को अनुभव करता है, तो यह बदलाव धीरे-धीरे स्थायी रूप ले लेता है। इस प्रकार सस्य विज्ञान प्रणाली केवल तकनीक न रहकर एक ऐसी सोच बन जाती है, जो प्रकृति के साथ संतुलन और भविष्य की सुरक्षा पर आधारित है।

सस्य विज्ञान प्रणाली खेती के भविष्य की मजबूत आधारशिला बन रही है। यह परंपरागत ज्ञान को नकारे बिना उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सशक्त करती है और मृदा, जल, फसल एवं किसान के बीच संतुलन स्थापित कर खेती को टिकाऊ, लाभकारी और सुरक्षित बनाती है।

खेती का भविष्य उस संतुलन में निहित है, जहां परंपरा और विज्ञान एक-दूसरे के पूरक बनें। सस्य विज्ञान प्रणाली किसान को निर्देश नहीं देती, बल्कि उसे सही विकल्प और समझ प्रदान करती है। आने वाले समय में वही खेती सफल होगी, जो संसाधनों का सम्मान करे, जोखिम को समझे और भविष्य की पीढ़ियों के लिए धरती को सुरक्षित रखे।

इसी संतुलित सोच के साथ यह पद्धति खेती के भविष्य की नई दिशा तय कर रही है।

बीज, पोषण और फसल प्रबंधन का वैज्ञानिक संतुलन

खेती का भविष्य काफी हद तक सही बीज चयन, संतुलित पोषण एवं प्रभावी फसल प्रबंधन पर निर्भर करता है। सस्य विज्ञान पद्धति इस बात पर विशेष बल देती है कि फसल किस्मों का चयन स्थानीय जलवायु एवं मृदा परिस्थितियों के अनुरूप किया जाए। ऐसी उन्नत एवं सहनशील किस्में, जो बदलते मौसम के प्रभावों को झेल सकें, न केवल उत्पादन को स्थिर बनाती हैं, बल्कि किसान के जोखिम को भी कम करती हैं। पोषण प्रबंधन के संदर्भ में वैज्ञानिक दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि अधिक मात्रा में उर्वरक का प्रयोग हमेशा लाभकारी नहीं होता। फसल की अवस्था, मृदा की आवश्यकता एवं पोषक तत्वों के संतुलन को ध्यान में रखते हुए उर्वरक देने से लागत में कमी आती है तथा मृदा स्वास्थ्य भी दीर्घकाल तक सुरक्षित रहता है। इसी प्रकार, कीट एवं रोग प्रबंधन में समेकित एवं संतुलित उपायों को अपनाना आवश्यक है। जैविक एवं रासायनिक नियंत्रण के उचित समन्वय से फसल की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है, साथ ही पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव भी कम होता है। स्पष्ट है कि बीज, पोषण एवं प्रबंधन के बीच वैज्ञानिक संतुलन स्थापित कर खेती को अधिक सुरक्षित, टिकाऊ एवं लाभकारी बनाया जा सकता है।

जून के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह[1], कपिला शेखावत[1], अंजली पटेल[2], एस.एस. राठौर[1], विनय उपाध्याय[3] और प्रवीण कुमार उपाध्याय[1]

" जून माह कृषि कार्यों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इसी समय दक्षिण-पश्चिम मानसून देश के विभिन्न भागों में दस्तक देने लगता है और खरीफ फसलों की तैयारी शुरू हो जाती है। इस माह किसान खेतों की जुताई, मेड़बंदी, जल-संरक्षण तथा बीज एवं उर्वरकों की व्यवस्था जैसे आवश्यक कार्य करते हैं। खरीफ फसलों, जैसे-धान, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि का देश के खाद्यान्न उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान है और इनकी सफलता काफी हद तक मानसून की स्थिति पर निर्भर करती है। जून में धान की नर्सरी तैयार करने, चारा फसलों तथा रेशेदार फसलों की बुआई संबंधी कार्य भी किए जाते हैं। बारानी क्षेत्रों में ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी/मंडुआ के साथ-साथ तिलहनी फसलें, जैसे सोयाबीन, मूंगफली, सूरजमुखी, तिल, कुसुम व अरंडी; रेशेदार फसलें, जैसे-कपास एवं जूट तथा चारा फसलें, जैसे-मक्का, ज्वार, बाजरा, लोबिया, ग्वार एवं ल्यूसर्न आदि की बुआई के लिए आवश्यक प्रबंध किए जाते हैं। इस महीने कृषि कार्यों के सफल निष्पादन के लिए मौसम आधारित कृषि परामर्श पर विशेष ध्यान देना चाहिए। मानसून के दौरान मौसम में अस्थिरता के कारण खरीफ फसलों में संभावित नुकसान को कम करने हेतु आकस्मिक फसल योजना के लिए आवश्यक संसाधनों, विशेषकर बीज, का प्रबंधन समय पर कर लेना चाहिए। फसलों के अनुसार आवश्यक उन्नत सस्य क्रियाओं का विवरण इस लेख में प्रस्तुत किया गया है। "

जून माह भारतीय कृषि व्यवस्था में खरीफ मौसम की औपचारिक शुरुआत का संकेत देता है। यह समय किसानों के लिए नई फसल चक्र की तैयारी, संसाधनों के प्रबंधन और मौसम आधारित निर्णयों का महत्वपूर्ण चरण होता है। मानसून की पहली वर्षा के साथ खेतों में गतिविधियां तेज हो जाती हैं और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नई ऊर्जा का संचार होता है। ऐसे समय में वैज्ञानिक कृषि प्रबंधन अपनाकर किसान उत्पादन, लाभ और जोखिम प्रबंधन तीनों को संतुलित कर सकते हैं।

[1]सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012; [2]सस्य विज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर-492012 (छत्तीसगढ़); [3]सस्य विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

धान

मृदा चयन एवं क्यारी तैयारी

धान की खेती के लिए अच्छी जलधारण

क्षमता वाली चिकनी अथवा मटियार भूमि, जिसका पीएच मान 6.5 से 8.5 के बीच हो, उपयुक्त रहती है। नर्सरी क्षेत्र की गर्मियों में 3-4 बार जुताई कर खेत को कुछ समय खाली छोड़ने से मृदाजनित रोगों में कमी आती है। पलेवा लगाने के बाद खेत में पानी की पतली परत बनाए रखते हुए एक दिन तक छोड़ दें। क्यारियां 1.5-2.0 मीटर चौड़ी एवं 8-10 मीटर लंबी बनानी चाहिए तथा उनके बीच 1.5-2.0 मीटर का फासला रखें। एक हैक्टर रोपाई हेतु लगभग 500 वर्गमीटर नर्सरी क्षेत्र पर्याप्त होता है। अंकुरण के बाद 2-3 दिनों तक बीजों को पुआल से ढककर रखें तथा नवपौध हरी होने तक पक्षियों से बचाव करें। इससे जड़ गलन, झोंका एवं पत्ती झुलसा जैसे रोगों के नियंत्रण में सहायता मिलती है।

मृदाशोधन एवं बीजोपचार

मृदाजनित रोगों एवं कीटों के नियंत्रण तथा बीज अंकुरण बढ़ाने के लिए ट्राइकोडर्मा अथवा ब्यूवेरिया बेसियाना बायोपेस्टीसाइड 2.5-3.0 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से प्रयोग करें। आवश्यकता होने पर क्लोरोपायरीफॉस 20 ईसी की 2.5-3.0 लीटर मात्रा प्रति हैक्टर प्रयोग की जा सकती है। बीजजनित फफूंद एवं जीवाणु रोगों की रोकथाम हेतु 10 लीटर पानी में 5 ग्राम इमिसान या 10 ग्राम बाविस्टीन तथा 2.5 ग्राम पोसामाइसिन या 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन अथवा 2.5 ग्राम एग्रीमाइसिन घोल लें। 20-25 कि.ग्रा. छांटे हुए बीजों को इस घोल में 24 घंटे तक भिगोएं तथा बाद में 24-36 घंटे तक जमाव हेतु रखें। इस दौरान समय-समय पर पानी का छिड़काव करते रहें। अंकुरित बीजों को संतृप्त गारे वाली नर्सरी क्यारियों में समान रूप से बिखेरें।

बीजदर

मोटे दानों वाली किस्मों के लिए 30-35 कि.ग्रा. तथा बासमती किस्मों के लिए 20-25 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त होता है।

नर्सरी में पोषक तत्व प्रबंधन

1000 वर्गमीटर नर्सरी क्षेत्र के लिए 10 क्विं. सड़ी गोबर की खाद, 10 कि.ग्रा. डाइअमोनियम फॉस्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट जुताई से पूर्व मृदा में अच्छी तरह मिला दें। यदि 10-12 दिनों बाद पौधों का रंग हल्का पीला दिखाई दे, तो एक सप्ताह के अंतराल पर दो बार 10 कि.ग्रा. यूरिया/1000 वर्गमीटर की दर से छिड़काव करें। इससे पौधों की वृद्धि अच्छी होती है। धान-गेहूं फसल चक्र वाले क्षेत्रों में प्रतिवर्ष हरी खाद अथवा 100-120 क्विंटल/हैक्टर सड़ी गोबर की खाद का प्रयोग लाभकारी रहता है।

सारणी 1. धान की प्रमुख उन्नत प्रजातियां

वर्ग	प्रमुख किस्में
बासमती धान	पूसा बासमती 1847, पूसा बासमती 1885, पूसा बासमती 1886, पूसा बासमती 1979, पूसा बासमती 1985, पूसा बासमती 1882, पूसा 2090, पूसा 1824, पूसा बासमती 1692, पूसा बासमती 1637, पूसा बासमती 1609, पूसा 1612, पूसा बासमती 1718, पूसा बासमती 1726
सुगंधित धान	पूसा सुगंध-2, पूसा सुगंध-3, पूसा सुगंध-5, पंत सुगंध 15, पंत सुगंध धान 17, माही सुगंध, मालवीय सुगंध 105, मालवीय सुगंध धान-4-3, सुगंध सांबा
मोटे धान	सीआर धान 308, सीआर धान 309, सीआर धान 312, सीआर धान 313, सीआर धान 314, सीआर धान 315, सीआर धान 316, सीआर धान 317, सीआर धान 318, सीआर धान 319, मोती गोल्ड, मालवीय धान-46005
ऊसर धान	सीएसआर-10, नरेंद्र ऊसर धान-2, सीएसआर-13, सीएसआर-27, नरेंद्र ऊसर धान-3, सीएसआर-23, सीएसआर-36, नरेंद्र ऊसर धान 2008
छोटे-पतले धान	डीआरआर धान 53, डीआरआर धान 54, डीआरआर धान 55, डीआरआर धान 56, डीआरआर धान 58, डीआरआर धान 59, डीआरआर धान 60, एमटीयू 7029, बीपीटी 5204, एमटीयू 1075, उन्नत सांबा मंसूरी, नरेंद्र लालमती, राजेंद्र श्वेता, राजेंद्र भागवती
संकर किस्में	पीआरएच-10, कर्नाटक संकर धान-2, डीआरआरएच-3, अराइज 6444, अराइज 6201, अराइज 6741, अराइज तेज (एचआरआई 169), अराइज प्राइमा, पीएचबी.-71, आर.एच.-204, एच.आर.आई.-120, पंत संकर धान-1, नरेंद्र संकर धान-2, नरेंद्र ऊसर संकर धान-3
काला नमक किस्में	पूसा नरेंद्र काला नमक 1638, पूसा नरेंद्र काला नमक 1652, बौना काला नमक-101, बौना काला नमक-102, के.एन.-3
जीनोम-संपादित किस्में	डीआरआर धान 100 (कमला), पूसा डीएसटी राइस-1-कम पानी में अधिक उत्पादन, शीघ्र पकने वाली, 20-30 प्रतिशत अधिक उपज देने वाली तथा कम मीथेन उत्सर्जन एवं कम कार्बन फुटप्रिंट वाली उन्नत किस्में

धान उत्पादन की श्री विधि

- श्री विधि (एसआरआई) धान उत्पादन की ऐसी उन्नत पद्धति है, जिसमें मृदा उत्पादकता, जल उपयोग दक्षता, श्रम दक्षता एवं निवेश क्षमता बढ़ाकर पर्यावरण संरक्षण के साथ अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाता है।
- इस विधि में 8-15 दिन पुराने पौधों की रोपाई की जाती है।
- प्रत्येक स्थान पर केवल एक पौधा लगाकर 25×25 सें.मी. दूरी बनाए रखी जाती है।
- खरपतवार नियंत्रण हेतु कोनो वीडर का प्रयोग किया जाता है।
- वनस्पति अवस्था के दौरान खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखना आवश्यक होता है।
- इस पद्धति में रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैविक खाद एवं कम्पोस्ट के उपयोग को प्राथमिकता दी जाती है।

खरपतवार प्रबंधन

बुआई के 1-2 दिनों बाद पायराजोसल्फ्यूरॉन 250 ग्राम/हैक्टर की दर से अंकुरण पूर्व छिड़काव करें। शाकनाशी को 10-15 कि.ग्रा. रेत/1000 वर्गमीटर में मिलाकर क्यारियों में समान रूप से फैलाएं तथा 1-2 सें.मी पानी बनाए रखें, जिससे खरपतवारनाशी का प्रभाव समान रूप से हो सके।

रोपाई

मध्यम एवं देर से पकने वाली किस्मों की रोपाई माह के प्रथम पखवाड़े तक पूरी कर लें। शीघ्र पकने वाली किस्मों की रोपाई जुलाई के दूसरे पखवाड़े तक की जा सकती है। सामान्यत: 20-25 दिनों की स्वस्थ पौध रोपाई के लिए उपयुक्त रहती है। पौध उखाड़ने से एक दिन पूर्व नर्सरी में सिंचाई करें तथा रोपाई वाले दिन सुबह पौधों को सावधानीपूर्वक निकालकर मुलायम सामग्री से 5-8 सें.मी. व्यास के बंडलों में बांध लें। रोपाई 20-30×15 सें.मी. दूरी पर करें तथा प्रत्येक स्थान पर 2-3 पौधे ही लगाएं।

खाद एवं उर्वरक की मात्रा

धान में अधिक उत्पादन हेतु एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन अपनाएं तथा उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करें। बौनी

किस्मों के लिए 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है, जबकि बासमती की लंबी किस्मों हेतु 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की मात्रा पर्याप्त रहती है। फॉस्फोरस, पोटाश एवं जिंक की पूरी मात्रा अंतिम जुताई के समय दें। यूरिया की एक-तिहाई मात्रा रोपाई के 5 दिनों बाद, दूसरी मात्रा कल्ले फूटते समय तथा शेष मात्रा फूल आने से पहले दें। हरी खाद या गोबर खाद के प्रयोग पर नाइट्रोजन की मात्रा 20-25 कि.ग्रा./हैक्टर कम कर दें। डीएपी के प्रयोग पर यूरिया की मात्रा लगभग 50 कि.ग्रा./हैक्टर कम करें।

नील-हरित शैवाल का प्रयोग

नील-हरित शैवाल एक जैव उर्वरक है, जो मृदा में नाइट्रोजन स्थिरीकरण कर धान की फसल को पोषक तत्व उपलब्ध करवाता है। इसके प्रयोग से प्रति वर्ष लगभग 20-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर मृदा में उपलब्ध होती है। रोपाई के एक सप्ताह बाद 10-15 कि.ग्रा. टीका प्रति हैक्टर की दर से खड़े पानी में छिड़काव करें। अच्छे परिणाम हेतु इसका प्रयोग लगातार 3 वर्षों तक करें तथा खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखें। एलगी के साथ 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टर देने पर अच्छी उपज प्राप्त होती है।

ग्रीष्मकालीन मक्का की कटाई

दाने वाली मक्का की कटाई तब करें, जब भुट्टों की ऊपरी पत्तियां सूख जाएं एवं दाने सख्त हो जाएं। इस समय दानों में लगभग 25-30 प्रतिशत नमी रहती है। कटाई के बाद भुट्टों को एक सप्ताह तक धूप में सुखाकर कॉर्न शेलर से दाने अलग करें।

धान की सीधी बुआई

धान की सीधी बुआई (डीएसआर)

- यह एक ऐसी तकनीक है, जिसमें नर्सरी तैयार किए बिना सीधे खेत में बुआई की जाती है। इससे रोपाई में लगने वाले श्रम एवं खर्च में कमी आती है तथा लगभग 6000 रुपये/एकड़ तक लागत घटती है।
- इस विधि में पारंपरिक रोपाई की तुलना में लगभग 30 प्रतिशत कम पानी की आवश्यकता होती है।
- धान की स्थापना रोपाई, सूखा-डीएसआर एवं गीला-डीएसआर तीन प्रमुख विधियों से की जाती है।
- सूखा-डीएसआर में जीरो टिलेज अथवा पारंपरिक जुताई के बाद सूखे बीजों की बुआई या ड्रिलिंग की जाती है।
- गीला-डीएसआर में पहले से अंकुरित बीजों की बुआई पोखरयुक्त मृदा में की जाती है। इसमें ड्रम सीडर अथवा अवायवीय सीडर का उपयोग किया जा सकता है।
- उपयुक्त किस्मों एवं उन्नत सस्य क्रियाओं को अपनाकर डीएसआर तकनीक से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अधिक उत्पादन एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है।
- इस विधि में 25-30 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर की दर से 25×10 सें.मी. दूरी पर पलेवा किए खेत में सीधी बुआई करें।
- डीएसआर के लिए 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 60 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25-30 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की संस्तुति की जाती है।

सारणी 2. खरपतवार के नियंत्रण हेतु विभिन्न रसायनों का प्रयोग, अनुशंसित मात्रा एवं समय

रसायन	मात्रा (प्रति हैक्टर)	छिड़काव का उपयुक्त समय
पेण्डिमेथिलीन 30 ई.सी.	3.0-4.0 लीटर	रोपाई/बुआई के 1-2 दिनों के अंदर
ब्यूटाक्लोर 50 ई.सी.	2.5-4.0 लीटर	रोपाई के 2-3 दिनों बाद
थायोबेनकॉर्ब 50 ई.सी.	2.0-3.0 लीटर	रोपाई के 3-4 दिनों बाद
अनिलोफॉस 30 ई.सी.	1.25-1.50 लीटर	रोपाई के 3-4 दिनों बाद, बासमती धान में प्रयोग न करें
प्रेटिलाक्लोर 50 ई.सी.	1.0-1.50 लीटर	रोपाई/बुआई के 1-2 दिनों के अंदर
पायराजोसल्फ्यूरॉन ईथाइल 10 डब्ल्यू.पी.	25 ग्राम	रोपाई/बुआई के 10-20 दिनों बाद
बिस्पाइरिबैक सोडियम 10 एस.सी. (नोमिनी गोल्ड)	250 मि.ली.	रोपाई/बुआई के 20-30 दिनों बाद
ईथोक्सीसल्फ्यूरॉन 15 डब्ल्यू.डी.जी.	30 ग्राम	रोपाई/बुआई के 20-25 दिनों बाद
साइहेलोफोप ब्यूटाइल 10 ई.सी.	75-80 मि.ली.	रोपाई/बुआई के 10-20 दिनों बाद
एजिमसल्फ्यूरॉन 50 डी.एफ.	70 मि.ली.	रोपाई/बुआई के 50-60 दिनों बाद

खरीफ मक्का

बुआई समय एवं भूमि की तैयारी

देर से पकने वाली मक्का की बुआई मध्य मई से मध्य जून तक पलेवा करके करें, ताकि वर्षा से पहले पौधे अच्छी तरह स्थापित हो जाएं। शीघ्र पकने वाली किस्मों की बुआई जून के अंतिम सप्ताह तक पूरी कर लें। मक्का के लिए दोमट से बलुई दोमट, अच्छी जल निकास वाली एवं कार्बनिक पदार्थयुक्त भूमि उपयुक्त रहती है। खेत की तैयारी हेतु एक गहरी जुताई तथा 2-3 जुताई कल्टीवेटर से करें एवं बाद में पाटा लगाकर नमी सुरक्षित रखें।

किस्मों का चयन

खरीफ मक्का की खेती परिपक्वता

अवधि के आधार पर मक्का की अधिक उपज देने वाली बहुत सी संकर प्रजातियां उपलब्ध हैं:

- **जल्दी पकने वाली किस्में (80-85 दिन):** पूसा अर्ली हाइब्रिड मक्का-6, पीईएचएम-2, पीईएचएम-3, पीईएचएम-5, विवेक संकर मक्का-4, 5, 9, 15, 17, 21, 27, 29, 33, 43 एवं प्रकाश।
- **मध्यम अवधि की किस्में (85-95 दिन):** पूसा बायोफोर्टिफाइड मक्का हाइब्रिड-1 से 8, पूसा एचएम-4, पूसा एचएम-8, पूसा एचएम-9, पीएचएम-1, केएच-510, जवाहर मक्का, एमएमएच-69, एचएम-10 एवं बायो-9637।
- **पूर्णकालिक परिपक्व किस्में (100-110 दिन):** पूसा जवाहर संकर मक्का-1, पूसा जवाहर हाइब्रिड मक्का-3, गुजरात आनंद व्हाइट मक्का हाइब्रिड-2, शीतल एवं बुलंद।
- **प्रोटीनयुक्त मक्का किस्में:** एचक्यूपीएम-1, एचक्यूपीएम-4, एचक्यूपीएम-5, एचक्यूपीएम-7, विवेक क्यूपीएम-9, शक्तिमान-1, शक्तिमान-3 एवं शक्तिमान-4 प्रमुख हैं।
- **विशेष उपयोग वाली किस्में:** बेबीकॉर्न हेतु पूसा संकर-2, पूसा संकर-3 एवं बीएल-42; पॉपकॉर्न हेतु पूसा पॉपकॉर्न हाइब्रिड-1, पूसा पॉपकॉर्न हाइब्रिड-2 एवं पर्ल पॉपकॉर्न; स्वीट कॉर्न हेतु पूसा सुपर स्वीट कॉर्न-1 तथा चारा मक्का हेतु पूसा चारा मक्का हाइब्रिड-1 उपयुक्त हैं।

बुआई

खरीफ मक्का में 65,000-78,000 पौधे प्रति हैक्टर प्राप्त करने के लिए 20-25 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बीज 4-5 सें.मी. गहराई पर बोएं। अगेती किस्मों में पंक्ति से पंक्ति व पौधे से पौधे की दूरी 45×20 सें.मी. तथा मध्यम व देर से पकने वाली किस्मों में 60×25 सें.मी. रखें। बीजोत्पादन के लिए 60-75×12-15 सें.मी. की दूरी उपयुक्त रहती है।

उर्वरक

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर ही करें। सामान्यत: मक्का के लिए 120-150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 75 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 75 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की संस्तुति की जाती है। बुआई

संकर मक्का की प्रजाति विवेक क्यूपीएम-9

के समय नाइट्रोजन की एक-चौथाई मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा दें। जीवांश पदार्थ की कमी होने पर बुआई से 15-20 दिन पहले 6-8 टन गोबर की खाद प्रति हैक्टर मिलाएं। शेष नाइट्रोजन दो बराबर भागों में पहली घुटनों की ऊंचाई पर और दूसरी जड़ें निकलने की अवस्था में टॉप ड्रेसिंग के रूप में दें। जिंक की कमी वाले क्षेत्रों में अंतिम जुताई के समय 20-25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर मिलाएं।

सिंचाई

मक्का में प्रारंभिक अवस्था तथा सिल्किंग से दाना बनने की अवस्था तक पर्याप्त नमी आवश्यक है। वर्षा न होने पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। वर्षा के बाद खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें, अन्यथा पौधे पीले पड़ सकते हैं और बढ़वार रुक सकती है।

खरपतवार प्रबंधन

पहली निराई-गुड़ाई जमाव के 15-20 दिनों बाद और दूसरी 35-40 दिनों बाद करें। खरपतवार नियंत्रण के लिए एट्राजीन 50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 1.5-2.0 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर या एलाक्लोर 50 ई.सी. 4-5 लीटर को 600-800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के 2-3 दिनों के भीतर, अंकुरण से पहले छिड़कें। बुआई के 20-30 दिनों बाद टॉपरामेजोन 33.6 प्रतिशत 8 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति एकड़ या टेम्बोट्रिओन 50 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति एकड़ को 500-600 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव किया जा सकता है। मक्का के बाद आलू की खेती करनी हो तो एट्राजीन का प्रयोग न करें।

बाजरा

जलवायु एवं मृदा

बाजरा की फसल के लिए शुष्क एवं गर्म जलवायु उपयुक्त रहती है। इसकी अच्छी वृद्धि के लिए 28-32 डिग्री सेल्सियस तापमान आवश्यक होता है। यह मुख्यत: वर्षा आधारित फसल है, इसलिए वर्षा की अनियमितता, देरी अथवा अतिवृष्टि का उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। अच्छे जल निकास वाली दोमट मृदा इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है।

भूमि की तैयारी एवं बुआई

अच्छी वर्षा के बाद 2-3 बार हैरो चलाकर खेत तैयार करें तथा भूमि को समतल रखें, ताकि वर्षा जल का निकास सुचारु बना रहे। बाजरा की बुआई जून से जुलाई के बीच की जाती है, जबकि 15 जून से 15 जुलाई का समय सबसे उपयुक्त माना जाता है। समय पर वर्षा होने पर तुरंत बुआई करें। वर्षा में देरी या लगातार अधिक वर्षा होने पर पौध तैयार कर रोपाई भी की जा सकती है। बुआई के लिए 4-5 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10-12 सें.मी. रखें। बीज 2-3 सें.मी. गहराई पर बोएं। इस प्रकार लगभग 1.75 से 2.0 लाख पौधे प्रति हैक्टर बनाए रखे जा सकते हैं।

किस्मों का चयन

बाजरा की प्रमुख संकर किस्मों में पूसा-23, पूसा-322, पूसा-605, एचएचबी-67, एचएचबी इम्प्रूव्ड, जीएचबी-318, आईसीएमएच-451, सुपर बॉस, आरएचबी-223 एवं डीएचबीएच-1397

प्रमुख हैं। संकुल किस्मों में पूसा कम्पोजिट-701, पूसा कम्पोजिट-1201, पूसा कम्पोजिट-266, पूसा-443, आईसीटीपी-8203, एचसी-4, एचसी-10 तथा राज बाजरा चरी-2 प्रमुख हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

उपलब्धता के अनुसार 20-22 टन अच्छी सड़ी गोबर की खाद पहली जुताई के समय खेत में मिलाएं। रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करें। संकर किस्मों के लिए 80-90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर तथा संकुल किस्मों के लिए 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 25 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 25 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर पर्याप्त रहता है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय 3-4 सें.मी. गहराई पर दें। शेष नाइट्रोजन अंकुरण के 4-5 सप्ताह बाद खेत में मिलाएं। फसल में 0.1 प्रतिशत थायोयूरिया घोल का छिड़काव बुआई के 30-35 दिनों बाद तथा बालियां निकलते समय करने से 10-15 प्रतिशत तक उपज वृद्धि एवं सूखा सहनशीलता में सुधार होता है।

ज्वार

जलवायु एवं मृदा

ज्वार की खेती शुष्क एवं कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसके लिए 25-35 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 40-60 सें.मी. वार्षिक वर्षा उपयुक्त रहती है। अच्छी जल निकास वाली हल्की दोमट, बलुई दोमट एवं भारी दोमट मृदा इसकी खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

बुआई

ज्वार की बुआई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक करना उपयुक्त रहता है। बरानी क्षेत्रों में वर्षा के तुरंत बाद बुआई करें। संकर किस्मों के लिए 8-9 कि.ग्रा. तथा संकुल किस्मों के लिए 10-12 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 45×15 सें.मी. रखें, जिससे लगभग 1.5 लाख पौधे प्रति हैक्टर बनाए रखे जा सकें। बुआई से पूर्व बीजों को कार्बेण्डाजिम, एग्रोसन जीएन अथवा कैप्टॉन से 2-5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। एजोस्पिरिलम एवं पीएसबी जैव उर्वरकों से बीज उपचार करने पर 15-20 प्रतिशत तक अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

किस्मों का चयन

ज्वार की प्रमुख संकर किस्मों में सीएसएच-16, सीएसएच-23, सीएसएच-30, सीएसएच-31 आर, सीएसएच-32, सीएसएच-33 एवं सीएसएच-35 प्रमुख हैं। संकुल किस्मों में पूसा संकुल-701, पूसा संकुल-1201, वर्षा, सीएसवी-24 एसएस, सीएसवी-26 आर, सीएसवी-29 आर, सीएसवी-30 एफ, सीएसवी-31 एवं सीएसवी-33 एमएफ प्रमुख हैं। चारा उत्पादन के लिए सीएसवी-30 एफ, सीएसवी-32 एफ, सीएसवी-33 एमएफ, पूसा चरी-6, पूसा चरी-9, पूसा चरी-23, हरियाणा चरी-171, एसएसजी-5 एवं पन्नी संकर ज्वार-5 उपयुक्त किस्में हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

ज्वार की अच्छी वृद्धि एवं उत्पादन के लिए 10 टन गोबर या कम्पोस्ट खाद प्रति हैक्टर की दर से बुआई से 15-20 दिनों पूर्व खेत में समान रूप से मिलाएं। सिंचित अवस्था में अच्छी उपज हेतु 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50-60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है, जबकि असिंचित दशा में 50-60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 30-40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर पर्याप्त रहता है। सूक्ष्म पोषक तत्वों में जिंक एवं आयरन विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। इनकी कमी होने पर बुआई के 35-40 दिनों बाद 0.2 प्रतिशत जिंक तथा 0.15 प्रतिशत आयरन घोल का पर्णीय छिड़काव करना लाभकारी होता है।

अन्य श्री अन्न

इसी माह कोदो, चेना, मंडुआ, रागी एवं सांवा जैसी श्री अन्न फसलों की बुआई की तैयारी भी की जाती है। कोदो के लिए 10-12 कि.ग्रा. तथा अन्य फसलों के लिए 8-10 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।

ग्रीष्मकालीन मूंग एवं उड़द

संकर बाजरा

जब फसल की लगभग 75-80 प्रतिशत फलियां पक जाएं, तब हंसिया की सहायता से कटाई कर लेनी चाहिए। कटाई के बाद फसल को 1-2 दिन खेत में सूखने के लिए छोड़ दें। कटाई में अधिक विलंब करने पर फलियां चटकने लगती हैं, जिससे उपज की हानि हो सकती है।

कटाई के बाद मड़ाई करें तथा दानों को धूप में अच्छी तरह सुखाएं, जब तक उनमें लगभग 12 प्रतिशत नमी न रह जाए। इसके बाद दानों को साफ एवं सूखे स्थान पर भंडारित करें। फलियों की तुड़ाई 2-3 बार करने से बेहतर गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। उचित प्रबंधन अपनाने पर मूंग एवं उड़द से 12-14 क्विंटल प्रति हैक्टर तक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

ग्रीष्मकालीन मूंगफली एवं सूरजमुखी

मूंगफली

जब फलियों के छिलकों पर नसें स्पष्ट दिखाई देने लगें तथा अंदर का भाग कत्थई रंग का हो जाए, तब खुदाई कर लेनी चाहिए। खुदाई के बाद फलियों को अच्छी तरह सुखाकर ही भंडारित करें। गीली मूंगफली के भंडारण से दाने काले पड़ जाते हैं, जिससे उनकी गुणवत्ता प्रभावित होती है और वे खाने एवं बीज दोनों के लिए अनुपयुक्त हो जाते हैं।

सूरजमुखी

इस फसल की कटाई तब करें, जब फूलों का पिछला भाग नीबू के रंग जैसा पीला हो जाए तथा निचली पत्तियां सूखकर गिरने लगें। कटाई के बाद फूलों के मुख्य भाग को अलग कर 2-3 दिनों तक सुखाएं, जिससे बीज निकालने में सुविधा होती है। सूखे फूलों को लकड़ी या मशीन से पीटकर बीज अलग

ग्रीष्मकालीन मूंग

करें। भंडारण से पहले बीजों को अच्छी तरह सुखाकर नमी 10 प्रतिशत से कम कर लें। सूरजमुखी के डंठल दुधारू पशुओं के लिए अच्छे चारे के रूप में उपयोगी होते हैं।

खरीफ अरहर

मृदा एवं भूमि की तैयारी

अरहर के लिए अच्छी जल निकास वाली भूमि उपयुक्त रहती है, क्योंकि जलभराव से फसल को भारी नुकसान होता है। मृदा का पीएच मान 5.5 से 8.0 के बीच होना चाहिए। मृदाजनित रोगों से बचाव के लिए एक ही खेत में लगातार अरहर की खेती न करें। बुआई से पहले एक गहरी जुताई कर 2-3 बार हैरो चलाकर मृदा को भुरभुरी बना लें। बुआई के समय खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है।

बुआई

अरहर खरीफ मौसम की प्रमुख दलहनी फसल है। सिंचित क्षेत्रों में अगेती अरहर की बुआई मध्य जून में पलेवा करके करें। मेड़ों पर बुआई करने से बेहतर उपज एवं जलभराव से सुरक्षा मिलती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30-45 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 5-10 सें.मी. रखें। बुआई के लिए 15-18 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बीजों को 4-5 सें.मी. गहराई पर बोना चाहिए। मेंड़ों पर बुआई करने से उपज में वृद्धि के साथ कवकजनित रोगों का प्रकोप भी कम होता है।

किस्मों का चयन

शीघ्र पकने वाली प्रमुख किस्मों में पूसा-16, पूसा-991, पूसा-992, पूसा-2001, पूसा-2002, पूसा-33, पूसा-855, पूसा-9, उपास-120, प्रभात, बहार एवं टाइप-21 प्रमुख हैं। **देर से पकने** वाली किस्मों में पन्त अरहर-291, मानक, अमर, नरेन्द्र अरहर-1, नरेन्द्र अरहर-2, नरेन्द्र अरहर-3, आजाद के-91-25, मालवीय विकल्प-3, मालवीय विकल्प-6 एवं टाइप-17 प्रमुख हैं।

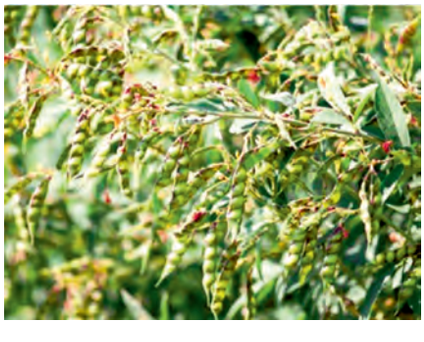

अरहर

बीजोपचार

अच्छे अंकुरण एवं स्वस्थ पौध संख्या बनाए रखने के लिए बीजोपचार आवश्यक है। प्रति कि.ग्रा. बीज को 2-2.5 ग्राम थीरम एवं 1 ग्राम कार्बेण्डाजिम से उपचारित करने के बाद राइजोबियम मिश्रण से उपचारित करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

अरहर में उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित मात्रा में करना चाहिए। अच्छी उपज के लिए 15-20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 20 कि.ग्रा. सल्फर प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। फॉस्फोरस की पूर्ति हेतु 250 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट अथवा 100 कि.ग्रा. डीएपी प्रति हैक्टर बुआई के समय पंक्तियों में पोरा या नाई की सहायता से दें, ताकि उर्वरक सीधे बीज के संपर्क में न आए। जिंक की कमी वाले क्षेत्रों में 20 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर का प्रयोग लाभकारी रहता है।

खरीफ सूरजमुखी

मृदा एवं जलवायु

सूरजमुखी की खेती अच्छी जल निकास

खरीफ मूंगफली

बुआई

खरीफ मूंगफली की बुआई का उपयुक्त समय जून का दूसरा पखवाड़ा है। असिंचित क्षेत्रों में मानसून आने के बाद बुआई करें तथा कार्य जुलाई के प्रथम पखवाड़े तक पूरा कर लें। गुच्छेदार किस्मों के लिए पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 30×10 सें.मी. तथा फैलने वाली किस्मों के लिए 45-60×10-15 सें.मी. रखें। खरीफ मौसम में संभव हो तो मूंगफली की बुआई मेंड़ों पर करें, जिससे जल निकास बेहतर बना रहता है।

किस्मों का चयन

मूंगफली की प्रमुख उन्नत किस्मों में आईसीजीएस-11, आईसीजीएस-44, जीजी-3, जीजी-6, जीजी-11, जीजी-20, गिरनार-1, टीएजी-24, टीएजी-26, जेएल-24, कादिरी-4, प्रगति, ज्योति, गंगापुरी, जवाहर, मुक्ता, प्रकाश, चित्रा, पंजाब मूंगफली नं.-1, एचएनजी-10, डीआरजी-17 एवं अम्बर प्रमुख हैं।

बीज दर एवं बीजोपचार

मध्यम फैलाव वाली किस्मों के लिए 80-100 कि.ग्रा., अधिक फैलाव वाली किस्मों के लिए 60-80 कि.ग्रा. तथा गुच्छेदार किस्मों के लिए 100-125 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बुआई से पहले बीज को 2-3 ग्राम थीरम या कार्बेण्डाजिम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। इसके 5-6 घंटे बाद बीज को उपयुक्त राइजोबियम मिश्रण से उपचारित कर छाया में सुखाएं तथा शीघ्र बुआई करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

प्रारंभिक वृद्धि के लिए 20-30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 30-40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर दें। गंधक एवं कैल्शियम की पूर्ति हेतु 200-400 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति हैक्टर का प्रयोग लाभकारी होता है। बारानी क्षेत्रों में 15-20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 20-25 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर पर्याप्त रहता है। बोरॉन की कमी होने पर 2 कि.ग्रा. बोरेक्स तथा जिंक की कमी होने पर 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर प्रयोग करें।

सारणी 3. अरहर फसल हेतु बीज दर, दूरी एवं उर्वरक संस्तुतियां

फसल	बीज मात्रा (कि.ग्रा./है.)	पंक्ति से पंक्ति दूरी (सें.मी.)	पौधे से पौधे की दूरी (सें.मी.)	नाइट्रोजन : फॉस्फोरस : पोटाश (कि.ग्रा./है.)	सल्फर : जिंक (कि.ग्रा./है.)
अगेती अरहर	15-20	45	10-15	15-20 : 40-50 : 20	20 रू 15
पछेती अरहर	10-15	60-75	20-25	15-20 : 40-50 : 20	20 रू 15

सूरजमुखी

वाली सभी प्रकार की मृदा में की जा सकती है, किन्तु दोमट एवं बलुई दोमट मृदा, जिसका पीएच मान 6.5-8.5 हो, अधिक उपयुक्त रहती है। 26-30 डिग्री सेल्सियस तापमान इसकी अच्छी वृद्धि एवं उत्पादन के लिए अनुकूल माना जाता है।

बीज दर एवं बुआई

संकर किस्मों के लिए 7-8 कि.ग्रा. तथा संकुल किस्मों के लिए 12-15 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। संकर किस्मों की बुआई 60×20 सें.मी. तथा संकुल किस्मों की बुआई 45×20 सें.मी. दूरी पर करें। बुआई से पूर्व बीजों को 1 लीटर पानी में 20 ग्राम जिंक सल्फेट घोलकर तैयार किए गए घोल में 12 घंटे तक भिगोएं। इसके बाद बीजों को छाया में 8-9 प्रतिशत नमी रहने तक सुखाकर बाविस्टिन या थीरम से उपचारित करें। इसके बाद पीएसबी मिश्रण 20 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर 24 घंटे छाया में सुखाने के बाद बुआई करें। बुआई 15 जून के बाद करना उपयुक्त रहता है।

किस्मों का चयन

सूरजमुखी की प्रमुख संकुल किस्मों में सूर्या, मॉडर्न, डीआरएसएफ-108, के-5, टीएएसएफ-82, एलएसएफ-8 एवं फुले रविराज प्रमुख हैं। संकर किस्मों में केवीएसएच-1, एसएच-3322, डीआरएसएच-1, पीएसएफएच-118, पीएसएफएच-569, केवीएसएच-44 एवं केवीएसएच-53 प्रमुख हैं।

खरपतवार नियंत्रण

बुआई के 15-20 दिनों बाद अनावश्यक पौधों को निकालकर पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. बनाए रखें। रासायनिक नियंत्रण हेतु पेण्डीमेथिलिन 30 ई.सी. 3.3 लीटर प्रति हैक्टर की दर से 800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के बाद एवं अंकुरण से पूर्व छिड़काव करें। 30-35 दिनों बाद शेष खरपतवारों को हाथ से निकाल दें।

पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करें। परीक्षण उपलब्ध न होने पर 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय प्रयोग करें।

सोयाबीन

जलवायु एवं मृदा

सोयाबीन के लिए शुष्क एवं गर्म जलवायु उपयुक्त रहती है। बीजों का जमाव 25 डिग्री सेल्सियस तापमान पर लगभग 4 दिनों में हो जाता है। इसकी खेती के लिए 60-65 सें.मी. वर्षा वाले क्षेत्र उपयुक्त माने जाते हैं। अच्छी जल निकास वाली दोमट मृदा इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम रहती है। उत्तरी मैदानी एवं मध्य क्षेत्रों में बुआई मध्य जून से मध्य जुलाई तक तथा दक्षिणी क्षेत्रों में जून मध्य से जुलाई अंत तक पूरी कर लें। फूल आने से लगभग 2 सप्ताह पूर्व सिंचाई करने से फलियों की संख्या बढ़ती है।

सोयाबीन

तिल

बुआई

तिल की बुआई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। अधिक उपज एवं निराई-गुड़ाई में सुविधा के लिए बुआई पंक्तियों में करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30-45 सें.मी. रखें। उचित पौध संख्या बनाए रखने के लिए 4-5 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बुआई के 15-20 दिनों बाद पौधों की छंटाई कर पौधे से पौधे की दूरी 10-15 सें.मी. रखें।

उन्नत किस्में

तिल की प्रमुख उन्नत किस्मों में गुजरात तिल-1, गुजरात तिल-2, फुले तिल-1, प्रताप, ताप्ती, पद्मा, एन.-8, डीएम-1, पूरवा-1, आरटी-46, आरटी-54, आरटी-125, टीसी-25, टीकेजी-21, टीकेजी-22, टीकेजी-55, उमा, रामा, कृष्ण, पटना-64, कांके सफेद, विनायक, कालिका, कनक, उषा, पंजाब तिल-1, हरियाणा तिल-1 एवं शेखर प्रमुख हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

मृदा परीक्षण उपलब्ध न होने पर सिंचित क्षेत्रों में 40-50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20-30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर तथा वर्षा आधारित क्षेत्रों में 20-25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 15-20 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर प्रयोग करें। उपज वृद्धि के लिए 10-20 कि.ग्रा. गंधक प्रति हैक्टर का प्रयोग लाभकारी होता है। जिंक की कमी वाले क्षेत्रों में दो वर्ष में एक बार 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर दें। लंबे समय तक सूखा पड़ने पर 2 प्रतिशत यूरिया घोल का छिड़काव करें।

किस्मों का चयन

उत्तर मैदानी क्षेत्रों के लिए पीके-416, पूसा-16, पीएस-564, पीएस-1024, पीएस-1241 एवं एसएल-525 प्रमुख हैं। मध्य भारत के लिए एनआरसी-7, जेएस-80-21, जेएस-93-05, जेएस-95-60 एवं जेएस-335 उपयुक्त हैं। उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों के लिए बिरसा सोयाबीन-1, इंदिरा सोया-9 एवं प्रताप सोया-9 तथा पहाड़ी क्षेत्रों के लिए वीएल सोया-2, वीएल सोया-47, हरा सोया एवं पालम सोया प्रमुख किस्में हैं।

बुआई

बुआई के लिए नए एवं अच्छे अंकुरण वाले बीजों का चयन करें। छोटे दाने वाली किस्मों के लिए 60-65 कि.ग्रा., मध्यम दाने वाली किस्मों के लिए 70-75 कि.ग्रा. तथा मोटे दाने वाली किस्मों के लिए 80-85 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बुआई 45×5 सें.मी. दूरी पर पंक्तियों में करें। बुआई से पहले बीज को 2 ग्राम थीरम एवं 1 ग्राम कार्बेण्डाजिम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। इसके बाद राइजोबियम एवं पीएसबी मिश्रण से बीजोपचार करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

अच्छी उपज के लिए 5-10 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हैक्टर बुआई से 20-25 दिनों पहले खेत में मिला दें। फसल हेतु 20-25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60-80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40-50 कि.ग्रा. पोटाश एवं 20-25 कि.ग्रा. गंधक प्रति हैक्टर का प्रयोग करें।

खरपतवार नियंत्रण

बुआई के बाद एवं अंकुरण से पूर्व एलाक्लोर 50 ई.सी. 4 लीटर, फ्लूक्लोरालिन या ट्राइफ्लूरालिन 1 कि.ग्रा., पेण्डीमेथिलीन 1 कि.ग्रा. अथवा क्लोमोजोन 1 कि.ग्रा. को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें।

ग्रीष्मकालीन गन्ना

फसल प्रबंधन

गन्ने की फसल में आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई एवं सिंचाई करते रहें। फसल की वृद्धि एवं उत्पादन बढ़ाने के लिए 5 प्रतिशत यूरिया घोल का छिड़काव लाभकारी होता है। नाइट्रोजन की शेष मात्रा 50 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग के रूप में देकर मृदा चढ़ाएं। यूरिया का प्रयोग बुआई के 45, 90, 120 एवं 150 दिनों बाद किया जा सकता है।

कपास

बुआई एवं बीजोपचार

सिंचाई की उचित व्यवस्था होने पर कपास की बुआई मई-जून में की जा सकती है। बुआई से पहले बीज को 2-5 ग्राम कार्बेण्डाजिम या कैप्टॉन प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। इमिडाक्लोप्रिड 7 ग्राम अथवा कार्बोसल्फॉन 20 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज उपचारित करने से रस चूसक कीटों से 40-60 दिनों तक सुरक्षा मिलती है। दीमक नियंत्रण हेतु 10 मि.ली. क्लोरोपायरीफॉस को 10 मि.ली. पानी में मिलाकर बीज पर छिड़काव करें तथा 30-40 मिनट छाया में सुखाकर बुआई करें। अमेरिकन, देसी एवं संकर कपास के लिए क्रमशः 15-20, 10-12 तथा 4-5 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर पर्याप्त होता है। देसी एवं अमेरिकन कपास में 60×30 सें.मी. तथा संकर किस्मों में 90×40 सें.मी. दूरी रखें।

पोषक तत्व प्रबंधन

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर ही करें। देसी किस्मों के लिए 50-70 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 20-30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस/हैक्टर की आवश्यकता होती है। अमेरिकन किस्मों के लिए 60-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 20-30 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर तथा संकर किस्मों के लिए 150:60:60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश/हैक्टर की संस्तुति है। 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट/हैक्टर का प्रयोग लाभकारी रहता है।

रोग एवं कीट प्रबंधन

कपास में बैक्टीरियल झुलसा तथा फफूंदजनित रोगों की रोकथाम के लिए वर्षा प्रारम्भ होने पर 1.25 कि.ग्रा. कॉपर टॉक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण एवं 50 ग्राम एग्रीमाइसिन को 500-600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर दो छिड़काव 20-25 दिनों के अंतराल पर करें। फुदका (जैसिड), सफेद मक्खी, माहूं, थ्रिप्स एवं गूलरबेधक जैसे कीटों से बचाव हेतु मोनोक्रोटोफॉस 25 ई.सी. 1.25 लीटर तथा ट्रायजोफॉस 40 ई.सी. 1.50 लीटर दवा को 250-300 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार नियंत्रण के लिए समय-समय पर निराई करें। यदि बुआई के समय एट्राजीन का प्रयोग किया गया हो, तो इस माह 2,4-डी 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को 500-600 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें।

कीट नियंत्रण

तनाछेदक एवं शीर्ष छेदक कीट मार्च से सितंबर तक फसल को प्रभावित करते हैं और अधिक हानि पहुंचाते हैं। इनके नियंत्रण के लिए अंड समूहों को एकत्र कर नष्ट करें तथा मार्च से जुलाई तक 15 दिनों के अंतराल पर ट्राइकोकार्ड का प्रयोग करें। जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक पर्याप्त नमी की स्थिति में कार्टेप हाइड्रोक्लोराइड 20-25 कि.ग्रा. अथवा कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पौधों की जड़ों के पास प्रयोग करें।

ग्रीष्मकालीन गन्ना

चारा फसलें

बाजरा

बाजरा की खेती के लिए अच्छे जल निकास वाली हल्की से भारी मृदा, जिसका पीएच मान 6.5-7.5 हो, उपयुक्त रहती है। अच्छे अंकुरण एवं पौध संख्या के लिए खेत समतल, भुरभुरा एवं खरपतवार रहित होना चाहिए। खरीफ मौसम में जुलाई का प्रथम पखवाड़ा बुआई के लिए सर्वोत्तम समय माना जाता है।

चारे हेतु बाजरा की प्रमुख उन्नत किस्मों में पूसा मोती, जीएफबी-1, फोडर कम्बू-8, राज बाजरा चरी-2, यूपीएफबी-1,

टाइप-55, एफबीसी-16, पीएचबी-12 एवं आनन्द एस-11 प्रमुख हैं। बुआई सीडड्रिल से 20-25 सें.मी. पंक्ति दूरी पर करें। इसके लिए 8-10 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बीज छोटा होने के कारण 2-2.5 सें.मी. गहराई पर बोएं तथा बुआई से पहले बीजों को थीरम 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

ज्वार

ज्वार के लिए दोमट एवं बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम रहती है। जल निकास उचित होने पर काली एवं भारी मृदा में भी इसकी अच्छी उपज प्राप्त होती है। मृदा का पीएच मान 6.7-7.5 उपयुक्त रहता है। इस मौसम में ज्वार, लोबिया, ग्वार एवं बहुकटाई वाली चरी की बुआई करें। वर्षा न होने पर पलेवा करके बुआई करना लाभकारी रहता है। एक कटाई वाली प्रमुख किस्मों में पूसा चरी-6, पूसा चरी-9, यूपी चरी-1, हरियाणा चरी-136 एवं राजस्थान चरी-2 प्रमुख हैं। बहुकटाई वाली किस्मों में पूसा चरी-23, पूसा चरी हाइब्रिड-109, मीठी सूडान (एसएसजी-59-3), हरा सोना एवं एमएफएच-3 प्रमुख हैं। छोटे बीज वाली किस्मों के लिए 30-40 कि.ग्रा. तथा बड़े बीज वाली किस्मों के लिए 40-50 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

चारा फसलों के लिए सामान्यत: 70-80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है।

एकल कटाई वाली ज्वार में नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय दें तथा शेष नाइट्रोजन लगभग 30 दिनों बाद दें। बहुकटाई वाली ज्वार में प्रत्येक कटाई के बाद लगभग 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर दें। जिंक की कमी वाले क्षेत्रों में 10-20 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर बुआई के समय प्रयोग करें। ज्वार के लिए 40-45 कि.ग्रा., लोबिया के लिए 30-35 कि.ग्रा. तथा बहुकटाई वाली चरी के लिए 20-25 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।

चारा ज्वार

हरी खाद फसलें

आजकल किसान अधिक उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरकों का अधिक प्रयोग कर रहे हैं, लेकिन उर्वरकों, विशेषकर यूरिया की उपलब्धता में कमी को देखते हुए पोषक तत्वों के वैकल्पिक स्रोतों पर ध्यान देना आवश्यक है। हरी खाद का प्रयोग एक प्रभावी एवं व्यावहारिक विकल्प है। इसके उपयोग से मृदा की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है, उत्पादन लागत कम होती है तथा पर्यावरण संरक्षण में भी सहायता मिलती है।

प्रमुख फसलें

खरीफ मौसम में ढैंचा, सनई, ग्वार, मूंग, उड़द एवं लोबिया जैसी फसलें हरी खाद के लिए उपयुक्त हैं। इनकी बुआई वर्षा से पूर्व सूखे खेत में छिटकवां विधि से भी की जा सकती है, जिससे मानसून आने पर बीज आसानी से अंकुरित हो जाते हैं। हरी खाद हेतु प्रति हैक्टर 50-60 कि.ग्रा. ढैंचा, 60-80 कि.ग्रा. सनई, 20-25 कि.ग्रा. ग्वार, 15-20 कि.ग्रा. मूंग एवं उड़द तथा 30-35 कि.ग्रा. लोबिया बीज पर्याप्त होता है।

ढैंचा की फसल से 45 दिनों में लगभग 20-25 टन हरा पदार्थ एवं 85-105 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, सनई से 20-30 टन हरा पदार्थ एवं 85-125 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, ग्वार से 20-25 टन हरा पदार्थ एवं 68-85 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, मूंग एवं उड़द से 10-12 टन हरा पदार्थ एवं 41-49 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा लोबिया से 15-18 टन हरा पदार्थ एवं 74-88 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर मृदा को प्राप्त होती है।

उन्नत किस्में

ढैंचा की प्रमुख किस्मों में पंत ढैंचा-1, हिसार ढैंचा-1, सीएसडी-123 एवं सीएसडी-137 तथा सनई की प्रमुख किस्मों में नरेन्द्र सनई-1, के-12, एम-18, एम-35, बीई-1, बेलगांव, छिंदवाड़ा, टी-6, एसटी-55 एवं एसएस-2 प्रमुख हैं।

सावधानियां

ढैंचा की फसल को 40-45 दिनों के भीतर खेत में पलट देना चाहिए। अधिक देर होने पर तना सख्त हो जाता है, जिससे उसका अपघटन ठीक से नहीं हो पाता तथा दीमक का प्रकोप बढ़ सकता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

हरी खाद फसलों की बुआई के समय सामान्य उर्वरता वाली मृदा में 10-15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 40-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर देने से फसल की वृद्धि बेहतर होती है। इसके बाद ली जाने वाली फसल में नाइट्रोजन उर्वरक की मात्रा में लगभग 50 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है। जब फसल में अच्छी वृद्धि हो जाए तथा फूल आने से पहले, तब हल या डिस्क हैरो से फसल को मृदा में पलटकर पाटा चला दें। खेत में 5-6 सें.मी. पानी होने पर यह कार्य आसान हो जाता है तथा पौधों का अपघटन भी तेजी से होता है।

हरी खाद ढैंचा

बारानी क्षेत्रों में जल प्रबंधन

बारानी क्षेत्रों में जल का उचित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए ज्वार, बाजरा, मक्का, मूंग, उड़द, अरहर, ग्वार, मोठ एवं तिल जैसी खरीफ फसलों की कम पानी में अच्छी उपज देने वाली उन्नत किस्मों का चयन महत्वपूर्ण होता है। समय पर बुआई, फसल की क्रांतिक अवस्थाओं पर सिंचाई, बूंद-बूंद सिंचाई तकनीक का उपयोग, पूसा हाइड्रोजेल द्वारा कम पानी में फसल प्रबंधन तथा वाष्पीकरण कम करने हेतु पलवार (मल्चिंग) का प्रयोग जल उपयोग दक्षता बढ़ाने में सहायक होता है। सीमित जल संसाधनों में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए किसानों को वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाना चाहिए। बारिश का अधिकांश जल बहकर नालियों में चला जाता है और खेती में उपयोग नहीं हो पाता। यदि खेत के किसी हिस्से में छोटा जल संग्रहण तालाब बनाकर वर्षा जल का संचयन किया जाए, तो सूखे के समय सिंचाई हेतु पानी उपलब्ध रह सकता है। इसी सिद्धांत को 'गांव का पानी गांव में, खेत का पानी खेत में' कहा गया है। दलहनी एवं तिलहनी फसलों का लगभग 80 प्रतिशत उत्पादन वर्षा आधारित क्षेत्रों पर निर्भर करता है, इसलिए जल संरक्षण एवं संचयन तकनीकों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

सब्जी फसलें

भिंडी

इस फसल को लगभग सभी तरह की मृदा में उगाया जा सकता है, परन्तु अधिक उत्पादन हेतु जल निकास एवं जीवांश युक्त 6-6.8 पीएच वाली दोमट मृदा सर्वोत्तम रहती है। भिंडी की फसल यदि अप्रैल-मई में बुआई हुई है, तो भिंडी की तुड़ाई जून माह में की जाती है। जून बरसाती भिंडी की फसल की बुआई का उपयुक्त समय है।

किस्मों का चयन

भिंडी की प्रजाति पूसा ग्रीन भिंडी-5, पूसा ए-4, पूसा सावनी, पूसा मखमली, , आईआईवीआर-10 आदि प्रमुख हैं।

बीजदर व पोषक तत्व प्रबंधन

एक हैक्टर क्षेत्र के लिए भिंडी के 8-10 कि.ग्रा. बीज 45×30 सें.मी. की दूरी पर बुआई करने के लिए पर्याप्त होते है। खेत की तैयारी के समय 25-30 टन सड़ी गोबर की खाद या 10 टन नाडेप कम्पोस्ट खाद प्रति हैक्टर की दर से खेत में मिलायें। भिंडी की फसल में बुआई के समय 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से प्रयोग करें। भिंडी की फसल में तुड़ाई के बाद यूरिया 5-10 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से डालें तथा उसके उपरांत सिंचाई करें।

भिंडी

पौध संरक्षण

तापमान को ध्यान में रखते हुए माइट, जैसिड और हॉपर की निरंतर निगरानी करते रहें। इस मौसम में भिंडी की फसल में हल्की सिंचाई कम अंतराल पर करें। खरपतवार के लिए बुआई के 30-60 दिनों के दौरान कुल 2-3 निराई-गुड़ाई पर्याप्त होती हैं। जहां पर खरपतवारों की अधिक समस्या हो वहां खरपतवारनाशी फ्लूक्लोरालिन 1.5-2.0 लीटर को 500-600 लीटर पानी में घोलकर/हैक्टर क्षेत्र में बुआई से पूर्व छिड़काव करें।

कद्दूवर्गीय सब्जियां

बुआई

लौकी, तोरई, करेला, टिंडा, कद्दू, खीरा, ककड़ी, तरबूज, खरबूजा एवं पेठा जैसी कद्दूवर्गीय सब्जियों की बुआई का यह उपयुक्त समय है।

लौकी

किस्मों का चयन

लौकी की पूसा समर प्रोलिफिक लॉन्ग एवं पूसा नवीन; तोरई की पूसा चिकनी, पूसा नसदार, पंजाब सदाबहार एवं सतपुतिया; करेला की पूसा दो मौसमी, पूसा विशेष एवं कल्याणपुर बारहमासी; टिंडा की कल्याणपुर, लुधियाना सिलेक्शन एवं पंजाब टिंडा; कद्दू की पूसा विश्वास, पूसा विकास एवं पूसा हाइब्रिड-1; खीरा की पूसा उदय, पूसा बरखा एवं जापानीज लॉन्ग ग्रीन तथा पेठा की पूसा उज्ज्वल, पूसा उर्मि एवं पूसा श्रेयाली प्रमुख किस्में हैं।

बीज दर

लौकी एवं तोरई के लिए 4-5 कि.ग्रा., टिंडा के लिए 5-6 कि.ग्रा. तथा कद्दू एवं खीरा के लिए 3-4 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

उन्नत किस्मों के लिए 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 25 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 25 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर तथा संकर किस्मों के लिए 100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

अन्य प्रबंधन

बेल वाली फसलों में पर्याप्त नमी बनाए रखें, क्योंकि नमी की कमी से पुष्पण एवं परागण प्रभावित होता है और उत्पादन में कमी हो सकती है। अधिक तापमान की स्थिति में तैयार सब्जियों की तुड़ाई सुबह या शाम के समय करें तथा तुड़ाई के बाद उन्हें छायादार स्थान पर रखें।

बैंगन

जलवायु एवं मृदा

बैंगन की फसल के लिए गर्म एवं आर्द्र जलवायु उपयुक्त रहती है। इसकी अच्छी वृद्धि के लिए समशीतोष्ण जलवायु आवश्यक होती है। अच्छी जल निकास वाली सभी प्रकार की मृदा

फूलगोभी

नर्सरी की तैयारी एवं रोपाई

अगेती फूलगोभी के लिए अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मृदा उपयुक्त रहती है। खेत की अच्छी जुताई एवं पाटा लगाकर तैयारी करें। लगभग 2.5×1.0 मीटर आकार की सात क्यारियों में 200 ग्राम बीज बोया जा सकता है। क्यारियां लगभग 15 सें.मी. ऊंची बनाएं तथा ऊपरी सतह में अच्छी सड़ी गोबर की खाद मिलाएं। बीजों की बुआई 2.5-5.0 सें.मी. दूरी वाली पंक्तियों में करें। बुआई से पहले बीजों को 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा अथवा 2 ग्राम थीरम या कैप्टॉन प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। अगेती किस्मों की रोपाई 45×45 सें.मी. दूरी पर करें। दोमट मृदा में रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई करें तथा 5-6 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें।

किस्मों का चयन

अगेती फूलगोभी की प्रमुख किस्मों में पूसा दीपाली, पूसा कार्तिक संकर, पूसा सिंथेटिक, पूसा मेघना, पूसा अर्ली, पंत गोभी-2, पंत गोभी-3, अर्ली पटना, अर्ली कुंवारी, सेल-327 एवं सेल-328 प्रमुख हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

अच्छी उपज के लिए रोपाई से पूर्व 300 क्विंटल सड़ी गोबर की खाद प्रति हैक्टर खेत में अच्छी तरह मिला दें। इसके अतिरिक्त 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर का प्रयोग करें।

बैंगन

में इसकी खेती की जा सकती है, किन्तु दोमट एवं हल्की दोमट मृदा सर्वोत्तम मानी जाती है।

नर्सरी तैयारी एवं रोपाई

अगेती बैंगन की पौध तैयार करने हेतु पौधशाला में 5-7 सें.मी. दूरी पर पंक्ति बनाकर बीज बोएं। बुआई से पहले बीजों को 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा अथवा 2 ग्राम थीरम या कैप्टॉन प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। सामान्य किस्मों के लिए 400-450 ग्राम तथा संकर किस्मों के लिए 250-275 ग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।

किस्मों का चयन

अगेती बैंगन की प्रमुख किस्मों में पूसा श्यामला, पूसा पर्पल क्लस्टर, पूसा उत्तम, पूसा बिंदु, पूसा अंकुर, पूसा हाइब्रिड-5, पूसा हाइब्रिड-6, पूसा हाइब्रिड-9, पूसा क्रांति, पंत सम्राट, पंत ऋतुराज, पंजाब सदाबहार एवं पंजाब बरसाती प्रमुख हैं।

खरपतवार नियंत्रण

फसल में आवश्यकता अनुसार 2-3 निराई-गुड़ाई करें। रासायनिक नियंत्रण हेतु एलाक्लोर 50 ईसी 3.5 लीटर अथवा वासालिन 48 ईसी 2 लीटर प्रति हैक्टर को 800-1000 लीटर पानी में घोलकर रोपाई से पूर्व छिड़काव करें।

मिर्च

जलवायु एवं मृदा

मिर्च की खेती मैदानी क्षेत्रों में वर्षा ऋतु के दौरान की जाती है। बीज अंकुरण के लिए 16-20 डिग्री सेल्सियस, वृद्धि के लिए 21-27 डिग्री सेल्सियस तथा फल विकास एवं पकने के लिए लगभग 30 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। बलुई दोमट एवं दोमट मृदा, जिसका पीएच मान 5.6-6.8 हो, इसकी खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

नर्सरी तैयारी एवं रोपाई

खरीफ मौसम में मिर्च की बुआई जून-जुलाई में करें। एक हैक्टर क्षेत्र के लिए 1000-1200 ग्राम बीज पर्याप्त होता है। पौधशाला में बीज बोने से पहले बीजों को 4 ग्राम ट्राइकोडर्मा अथवा 2 ग्राम थीरम या कैप्टॉन प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। 30-35 दिनों की पौध जून के अंतिम सप्ताह तक खेत में रोपित करें। सामान्य किस्मों की रोपाई 45×45 सें.मी. तथा संकर किस्मों की रोपाई 60×45 सें.मी. दूरी पर करें।

किस्मों का चयन

हरी मिर्च की प्रमुख किस्मों में पूसा ज्वाला, पूसा सदाबहार, एनपी-46 ए एवं पंत सी-1 प्रमुख हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

खेत की तैयारी के समय 20-25 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हैक्टर मिलाएं। साथ ही 100-120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर दें। रोपाई से पहले आधी नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुताई के समय मिलाएं। शेष नाइट्रोजन खड़ी फसल में दो बार में दें।

पौध संरक्षण

विषाणु रोग से ग्रसित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें। इसके बाद इमिडाक्लोप्रिड 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

प्याज

जलवायु एवं मृदा

प्याज की फसल के लिए ऐसी जलवायु उपयुक्त रहती है, जो न अधिक गर्म हो और न ही अत्यधिक ठंडी। अच्छे कंद निर्माण के लिए लंबे दिन एवं अपेक्षाकृत अधिक तापमान लाभकारी होता है। इसकी खेती सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है, किन्तु जीवांश युक्त उपजाऊ दोमट मृदा, जिसमें जल निकास की अच्छी व्यवस्था हो, सर्वोत्तम रहती है। खरीफ मौसम में बीज द्वारा पौध तैयार करने हेतु बुआई जून मध्य तक करें। यदि छोटे कंदों द्वारा अगेती अथवा हरी प्याज की खेती करनी हो, तो कंदों की बुआई अगस्त में करें।

नर्सरी की तैयारी

एक हैक्टर क्षेत्र के लिए 8-10 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। पौध एवं कंद तैयार करने हेतु 3×1 मीटर आकार की क्यारियां बनाएं। वर्षाकाल में उचित जल निकास के लिए क्यारियों की ऊंचाई 10-15 सें.मी. रखें। बीजों को 5-7 सें.मी. पंक्ति दूरी पर 2-3 सें.मी. गहराई में बोएं। बुआई से पहले मृदा को अच्छी तरह भुरभुरी बना लें। आर्द्र गलन रोग से बचाव हेतु बीजों को ट्राइकोडर्मा विरिडी 4 ग्राम अथवा थीरम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। बुआई के बाद बीजों को बारीक खाद, भुरभुरी मृदा एवं घास से ढक दें।

किस्मों का चयन

खरीफ मौसम के लिए एन-53, पूसा रेड, पूसा रतनार, एग्रीफाउंड लाइट रेड, एग्रीफाउंड रोज, पूसा व्हाइट राउंड, पूसा व्हाइट फ्लैट एवं भीमा डार्क रेड प्रमुख किस्में हैं।

पोषक तत्व प्रबंधन

खरीफ प्याज के लिए 75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं 20 कि.ग्रा. सल्फर प्रति हैक्टर प्रयोग करें। खरीफ मौसम में जलभराव के कारण एन्थ्रेक्नोज रोग की आशंका बढ़ जाती है, इसलिए खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था बनाए रखें।

अदरक एवं हल्दी

इन फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा 50 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

पपीता

इसकी खेती गर्म एवं नमीयुक्त जलवायु में सफलतापूर्वक की जा सकती है। इसे 38-44 डिग्री सेल्सियस तापमान तक उगाया जा सकता है। उपजाऊ एवं अच्छी जल निकास वाली भूमि इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम रहती है। नए बाग लगाने के लिए पहले रेखांकन कर गड्ढों की खुदाई करें।

गड्ढा तैयारी एवं रोपण

पपीते के पौधे 2.5-3.0 मीटर दूरी पर लगाने चाहिए। इसके लिए 75×75×75 सें.मी. आकार के गड्ढे तैयार करें। प्रत्येक गड्ढे में 30-40 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद एवं 1 कि.ग्रा. नीम खली को ऊपरी मृदा में मिलाकर भरें तथा गड्ढे को भूमि सतह से लगभग 20 सें.मी. ऊंचाई तक भर दें।

बीज एवं पौध तैयार करना

एक हैक्टर क्षेत्र के लिए 500 ग्राम से 1 कि.ग्रा. बीज पर्याप्त होता है। पौधे बीज द्वारा तैयार किए जाते हैं। प्रति गड्ढा 2 पौधे लगाने पर लगभग 5000 पौधों की आवश्यकता होती है। पौध तैयार करने हेतु 20 सें.मी. चौड़े एवं 25 सें.मी. लंबे पॉलिथीन बैग लें, जिनमें नीचे जल निकास हेतु छिद्र हों। इनमें मृदा, रेत एवं गोबर खाद का मिश्रण भरें तथा प्रत्येक थैली में 2-3 बीज बोएं। पौध 15-20 सें.मी. ऊंची होने पर सावधानीपूर्वक गड्ढों में रोपित करें।

किस्मों का चयन

पपीते की प्रमुख उन्नत किस्मों में पूसा मेजेस्टी, पूसा जायंट, वाशिंगटन, सोलो, कोयम्बटूर, हनीड्यू, कुर्ग हनीड्यू, पूसा ड्वार्फ, पूसा

लीची

यह एक महत्वपूर्ण एवं स्वादिष्ट फलदार वृक्ष है। इसका प्रवर्धन मुख्यत: गूटी (लेयरिंग) विधि द्वारा किया जाता है। गुटी बांधने का सर्वोत्तम समय जून का दूसरा पखवाड़ा माना जाता है। इस अवधि में तैयार की गई गुटियों में जड़ बनने एवं सफल पौध तैयार होने की संभावना अधिक रहती है।

डिलीशियस, सिलोन एवं पूसा नन्हा प्रमुख हैं।

अमरूद

जलवायु एवं मृदा

अमरूद की खेती के लिए उपजाऊ बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम मानी जाती है। 6.0-7.5 पीएच मान वाली मृदा उपयुक्त रहती है। अधिक पीएच वाली भूमि में उकठा रोग का प्रकोप बढ़ सकता है। अमरूद की कयल उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इसकी खेती के लिए 15-30 डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकूल रहता है। यह सूखा सहन करने की क्षमता भी रखता है।

किस्मों का चयन

अमरूद की प्रमुख उन्नत किस्मों में इलाहाबाद सफेदा, हिसार सफेदा, लखनऊ-49, चित्तीदार, ग्वालियर-27 एवं एपल उवावा प्रमुख हैं। व्यावसायिक खेती के लिए अर्का मृदुला, श्वेता, ललित एवं पंत प्रभात भी उपयुक्त किस्में हैं। कोहीर, सफेदा एवं सफेद जाम प्रमुख संकर किस्में हैं।

गड्ढा तैयारी एवं रोपण

नए बागों के लिए रेखांकन के बाद 5×5 मीटर दूरी पर 75×75×75 सें.मी. आकार के गड्ढे तैयार करें। प्रत्येक गड्ढे में 30-40 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद एवं 1 कि.ग्रा. नीम खली को ऊपरी मृदा में मिलाकर भरें तथा भूमि सतह से लगभग 20 सें.मी. ऊंचाई तक भर दें।

अंतरवर्ती फसलें

प्रारंभिक 2-3 वर्षों तक बागों के खाली स्थानों में खरीफ मौसम में लोबिया, ज्वार, उड़द, मूंग एवं सोयाबीन जैसी फसलें उगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है।

केला

रोपाई एवं भूमि की तैयारी

केले की रोपाई का यह उपयुक्त समय है। इसकी खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली, उपजाऊ एवं नमी धारण क्षमता वाली मृदा का चयन करें। खेत की 3-4 बार जुताई कर अंतिम जुताई के समय 10 टन सड़ी गोबर की खाद मृदा में अच्छी तरह मिला दें। भूमि समतल करने हेतु ब्लेड हैरो या लेजर लेवलर का उपयोग करें। निमेटोड प्रभावित क्षेत्रों में रोपाई से पहले निमेटीसाइड का प्रयोग करें।

गड्ढा तैयारी एवं रोपण

रोपाई हेतु 45×45×45 सें.मी. अथवा 60×60×60 सें.मी. आकार के गड्ढे तैयार करें तथा कुछ दिनों धूप में खुला छोड़ दें। प्रत्येक गड्ढे में 10 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 250 ग्राम नीम खली एवं 20 ग्राम कार्बोफ्यूरॉन मिलाएं। स्वस्थ एवं रोगमुक्त जड़ों या राइजोम का चयन करें। रोपाई से पहले जड़ों को क्लोरोपायरीफॉस 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में उपचारित करें। फ्यूजेरियम रोग से बचाव हेतु कार्बेण्डाजिम 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में 15-20 मिनट तक जड़ों को डुबोएं।

दूरी एवं पौध संख्या

1.8×1.5 मीटर दूरी रखने पर लगभग 1450 पौधे प्रति एकड़ तथा 2×2.5 मीटर दूरी पर लगभग 800 पौधे प्रति एकड़ लगाए जा सकते हैं। रोपाई गड्ढे के मध्य करें तथा मृदा को अच्छी तरह दबाएं। अत्यधिक गहरी रोपाई से बचें।

सिंचाई प्रबंधन

अच्छी उपज के लिए 70-75 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। सर्दियों में 7-8 दिनों तथा गर्मियों में 4-5 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। वर्षा ऋतु में आवश्यकता अनुसार सिंचाई करें तथा अतिरिक्त जल निकास की उचित व्यवस्था रखें। टपक सिंचाई तकनीक अपनाने से लगभग 58 प्रतिशत जल की बचत एवं 23-32 प्रतिशत तक उपज वृद्धि संभव है।

कीट एवं रोग प्रबंधन

फलबेधक के नियंत्रण हेतु कार्बेरिल 10-20 ग्राम प्रति पौधा तने के चारों ओर मृदा में मिलाएं। राइजोम सुंडी से बचाव के लिए सूखी पत्तियां हटाकर बाग को साफ रखें। रोपाई से पहले राइजोम को मिथाइल टॉक्सीडेमेटॉन 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में उपचारित करें। चेंपा की रोकथाम हेतु मिथाइल डेमेटॉन 2 मि.ली. अथवा डाइमिथोएट 30 ईसी 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। थ्रिप्स नियंत्रण के लिए मिथाइल डेमेटॉन 20 ईसी 2 मि.ली. अथवा मोनोक्रोटोफॉस 36 डब्ल्यूएससी 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। निमेटोड नियंत्रण हेतु कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत सीजी से जड़ उपचार करें।

अंगूर

अंगूर के फलों को शीघ्र पकाने एवं मिठास बढ़ाने के लिए 50 मि.ग्रा. इथिफॉन एवं 100 ग्राम बोरेक्स को 100 लीटर पानी में घोलकर फलों के पकने से लगभग 15 दिनों पूर्व छिड़काव करें। छिड़काव के बाद सिंचाई नहीं करनी चाहिए। ■

बेर

एक वर्ष के बेर के पौधे में 5 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 50 ग्राम फॉस्फोरस एवं 25 ग्राम पोटाश प्रति पौधा दें। यह मात्रा प्रतिवर्ष इसी अनुपात में बढ़ाते रहें। आठ वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के पौधों के लिए 40 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 400 ग्राम नाइट्रोजन, 400 ग्राम फॉस्फोरस एवं 250 ग्राम पोटाश प्रति पौधा प्रयोग करें। बेर के पौधों में समय पर कटाई एवं छंटाई करना आवश्यक है, जिससे स्वस्थ वृद्धि एवं अच्छा फलन प्राप्त होता है।

पुष्प एवं सगंधीय पौधे

इस माह गुलदाउदी की कटिंग तैयार करें तथा गेंदा, देसी गुलाब, ग्लैडियोलस एवं रजनीगंधा की फसलों में निराई-गुड़ाई एवं आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। फूलों की संख्या एवं गुणवत्ता बढ़ाने के लिए जिब्रेलिक अम्ल (GA_3) 50 मि.ग्रा. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। लिली की फसल में भी आवश्यकतानुसार सिंचाई एवं खरपतवार नियंत्रण का विशेष ध्यान रखें।

डेरी पशुओं के लिए कम लागत वाली स्वचालित पेयजल इकाई

डेरी पालन में पशुओं के स्वास्थ्य और दुग्ध उत्पादन को बनाए रखने के लिए स्वच्छ एवं पर्याप्त पेयजल की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक होती है। सामान्यत: पशुपालकों को पशुओं को दिन में कई बार पानी पिलाने के लिए अतिरिक्त श्रम और समय लगाना पड़ता है। कई बार पानी की अनियमित उपलब्धता के कारण पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए कर्नाटक के दावणगेरे जिले के हलुवर्दी गांव के नवप्रवर्तक किसान श्री एच.एम. ध्यामप्पा ने डेरी पशुओं के लिए एक कम लागत वाली स्वचालित पेयजल इकाई विकसित की है। यह नवाचार न केवल पशुओं को उनकी आवश्यकता के अनुसार निरंतर जल उपलब्ध करवाता है, बल्कि इससे जल, श्रम और समय की भी बचत होती है। सरल संरचना, कम लागत और विद्युत रहित संचालन के कारण यह तकनीक छोटे एवं मध्यम डेरी किसानों के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

श्री एच.एम. ध्यामप्पा पिछले कई वर्षों से डेरी पालन से जुड़े हुए हैं और व्यावहारिक अनुभव के आधार पर इन्होंने इस उपयोगी तकनीक को विकसित किया है। यह स्वचालित पेयजल इकाई एक साधारण लेकिन प्रभावी तकनीकी अवधारणा पर आधारित है। इसमें लगभग 1,000 लीटर क्षमता की सिंटेक्स टंकी का उपयोग किया गया है, जिसे 7 इंच व्यास वाली सीपीवीसी पाइप से जोड़ा गया है। पाइप की ऊंचाई लगभग डेढ़ फीट रखी गई है तथा इसे नीले रंग से तैयार किया गया है, जिससे फफूंदी बनने की आशंका कम हो जाती है। इसके साथ 1¼ इंच की पीवीसी पाइप को शृंखलाबद्ध तरीके से लगभग 4 फीट की दूरी पर लगाया गया है, ताकि पशुओं तक समान रूप से पानी पहुंच सके। पानी के स्तर और प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए टंकी में बॉल वाल्व लगाया गया है। यह आवश्यकता के अनुसार पानी की मात्रा को स्वत: नियंत्रित करता है, जिससे पानी की बर्बादी नहीं होती।

इस प्रणाली की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि पशुओं को उनकी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार हर समय स्वच्छ पानी उपलब्ध रहता है। डेरी पशुओं को बार-बार पानी पिलाने के लिए मानव हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं पड़ती। जैसे ही पशु पानी पीते हैं, प्रणाली स्वत: पुन: जल भराव की प्रक्रिया को नियंत्रित कर लेती है। इससे पशुओं को निरंतर जल उपलब्ध रहता है और उन्हें प्यास की स्थिति का सामना नहीं करना पड़ता।

बिजली की आवश्यकता न होना भी इस तकनीक का एक महत्वपूर्ण लाभ है। ग्रामीण क्षेत्रों में कई बार बिजली की अनियमित उपलब्धता डेरी प्रबंधन को प्रभावित करती है, लेकिन यह इकाई पूरी तरह गुरुत्वाकर्षण और जल प्रवाह के सिद्धांत पर आधारित होने के कारण बिना बिजली के भी प्रभावी ढंग से कार्य करती है। इससे संचालन लागत में कमी आती है तथा किसानों को अतिरिक्त खर्च नहीं उठाना पड़ता।

सफाई और रखरखाव की दृष्टि से भी यह प्रणाली अत्यंत सरल है। पाइप और टंकी को आसानी से साफ किया जा सकता है, जिससे जल की गुणवत्ता बनी रहती है। स्वच्छ पानी उपलब्ध होने से पशुओं में जलजनित रोगों की आशंका भी कम हो जाती है। पर्याप्त जल उपलब्धता से पशुओं का स्वास्थ्य बेहतर रहता है तथा दुग्ध उत्पादन पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

जल संरक्षण

यह नवाचार विशेष रूप से उन किसानों के लिए लाभकारी है, जिनके पास अधिक संख्या में पशु हैं और जिन्हें प्रतिदिन पानी की व्यवस्था में काफी समय और श्रम लगाना पड़ता है। इस इकाई के उपयोग से श्रम लागत में कमी आती है तथा किसानों का समय अन्य कृषि एवं डेरी कार्यों में लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पानी की अनावश्यक बर्बादी भी कम होती है, जो वर्तमान समय में जल संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जल टैंक में लगा बॉल वाल्व

डेरी पशुओं के लिए साफ एवं निरंतर जल आपूर्ति

लागत प्रभावी

इस प्रणाली की एक और बड़ी विशेषता इसकी अत्यंत कम लागत है। बाजार में उपलब्ध समान प्रकार की स्वचालित पेयजल इकाइयों की लागत लगभग 7,000 रुपये तक होती है, जबकि श्री ध्यामप्पा द्वारा विकसित इस इकाई को लगभग 300 रुपये की लागत में तैयार किया जा सकता है। कम लागत होने के कारण छोटे एवं सीमांत किसान भी इसे आसानी से अपना सकते हैं।

इस नवाचार की उपयोगिता को देखते हुए आसपास के कई डेरी किसानों ने इसे अपनाना शुरू कर दिया है। यदि वैज्ञानिक परीक्षण एवं तकनीकी पुष्टिकरण के माध्यम से इसे और अधिक परिष्कृत किया जाए, तो यह तकनीक देशभर के डेरी किसानों के लिए एक उपयोगी मॉडल बन सकती है। ■

(स्रोत: विकसित कृषि संकल्प अभियान संकलन)

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹50

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाईपसैट एवं मुद्रित। संपादक: सुनीता अरोड़ा